सोलह महासती कथानक द्वितीय खण्ड

# शील के अमिट शिलालेख

मुनि मनितप्रभसागर

प्रिय मुनि मनितप्रभ की इस नई पुस्तक में उन सोलह महासतियों की कथाऐं हैं, जिन्होंने इन्हीं गुणों के पारगामी होकर पूर्णत्व पाया या पूर्णत्व प्राप्त करने का वरदान पा लिया।

ये कथाऐं केवल कथाऐं नहीं हैं, अपितु जीवन का एक आदर्श है। मन का सुख और शरीर की अमीरी उनके लिये तुच्छ थी, उन्हें प्रेम था तो अपनी आत्मा से, अपनी दृढ़ता से, अपने शील से !

ये कथाऐं समझौते की कहानियाँ नहीं हैं, ये कथाऐं न्यौछावर हो जाने की कथाऐं हैं। उन्होंने शील पर अपना जीवन न्यौछावर कर दिया... अपने सारे सुख न्यौछावर कर दिये !

शान्त चित्त से इन्हें पढना है और अपनी आत्म जागृति के साथ इन्हें जोडते हुए अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेना है, इसी में पुरुषार्थ की सार्थकता है।

मेरी कामना है कि मुनि मनितप्रभ के द्वारा इसी प्रकार सर्जन शृंखला निरन्तर प्रवहमान रहेगी।

उपाध्याय मणिप्रभसागर

सोलह महासती कथानक द्वितीय खण्ड

# शील के अमिट शिलालेख

मुनि मनितप्रभसागर

जहाज मंदिर प्रकाशन पुष्प
155

# नारी जाति के गौरवशाली पृष्ठ

पावन सानिध्य

पूज्य उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म. सा.

लेखन

मुनि मनितप्रभसागर

सम्पादन

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल
श्री जिनकांतिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट जहाज मंदिर
माण्डवला - 343042 , जिला - जालोर ( राज )
फोन - 02973 - 256107, 9649640451
ईमेल - jahaj_mandir@yahoo.co.in

जिनहरि विहार धर्मशाला
तलेटी रोड़, पालीताणा - 364270
फोन : 02848-252653,9427063069
ईमेल - jinharivihar@gmail.com

प्रति - 1000 ( 2013 )
1000 ( 2015 )

मूल्य - 50 रूपये

# समर्पण

जिनका अमल जीवन शील का संस्कार है...
जिनका धवल दर्शन अमृत की रसधार है...
जिनका विमल वर्तन धर्म का विस्तार है...
उन सोलह
महाविभूतियों - महासतियों
को
पल्लवित-संस्कारित-परिस्कृत
करने वाले
वीतराग परमात्मा के
बेदाग-बेनमून
जिनशासन को समर्पण

मुनि मनितप्रभसागर

# श्रुत सहभागी

पूज्य मुनिप्रवर श्री मनितप्रभसागरजी म.सा.

द्वारा आलेखित-संकलित-संयोजित

समस्या, समाधान और संतुष्टि

नामक प्रश्नोत्तर महाग्रंथ के विमोचन द्रव्य से

विमोचन लाभार्थी

श्रीमती लूणीबाई शंकरलालजी

श्रीमती सुंदरीबाई विजयचंद

श्रीमती नीतू मनीषकुमार

कविता, प्रिया, गौरव, सिद्धार्थ, दर्श, अरुषि,

अंजलि बैद परिवार (फलोदी-कोयम्बतुर)

Vijaychand Vaid
PRIYA EXPORTS
40/25, Kannuswamy Road,
East R.S. Puram, COIMBATORE
ph. : (0422) (R) 2550349 (O) 4369349
Cell : 093451 96701

# श्री रतनमाला प्रकाशन

**जहाज मंदिर, पो. मांडवला- 343042 जिला- जालोर राज.**

## साहित्य प्रकाशन योजना

पूज्य गुरुदेव श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. आदि साधु साध्वी मंडल द्वारा लिखित विविध लक्षी साहित्य निरन्तर प्रकाशित हो रहा है। प्रतिवर्ष 5 से 7 पुस्तकों का प्रकाशन हो रहा है। जिसमें तत्वज्ञान, प्रवचन, कथाऐं, जीवन कला आदि विविध विषयों का समावेश होता है। यह साहित्य बालकों, युवाओं व अन्य समाज के लोगों के लिये भी अत्यन्त उपयोगी होता है।

इस साहित्य प्रकाशन की यात्रा को निरन्तर गतिमान् बनाये रखने के लिये एक लाभप्रद योजना बनाई गई है। सकल श्री संघ व प्रबुद्ध श्रावकों से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करने वाली इस महान् योजना में लाभ लेने का निवेदन है।

आप जिन वाणी का प्रचार प्रसार करने में पूर्ण रूप से सहभागी बने, ऐसी प्रार्थना है

योजना

*श्रुत संरक्षक - राशि ५१ हजार रूपये*

हमारे संस्थान द्वारा प्रकाशित होने वाली हर पुस्तक में आपके परिवार के 7 नाम प्रकाशित किये जायेंगे।

*श्रुत समाराधक- राशि २५ हजार रूपये*

हमारे संस्थान द्वारा प्रकाशित होने वाली हर पुस्तक में आपके परिवार के 4 नाम प्रकाशित किये जायेंगे।

**श्रुत संरक्षक एवं श्रुत समाधारक सभी को संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य भेंट स्वरूप प्रदान किया जायेगा।**

*आजीवन साहित्य योजना*

**राशि – मात्र 2 हजार रूपये**

इस अल्पतम राशि एक बार प्रदान कर घर बैठे संस्थान द्वारा भविष्य में प्रकाशित होने वाला समस्त साहित्य प्राप्त कीजिये।

निवेदक

*श्री रतनमाला प्रकाशन*

श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट, जहाज मंदिर

पो. मांडवला– 343042 जिला– जालोर राज.

फोन–02973 256107 / 9649640451

**Email- jahajmandir99@gmail.com**

## साहित्य योजना

### श्रुत संरक्षक

- श्री जैन श्वेताम्बर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादावाडी संघ, इचलकरंजी
- श्री जिनहरि विहार ट्रस्ट, पालीताना
- पूजनीया प्रवर्तिनी श्री प्रमोदश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की प्रेरणा से श्री जिनकुशलसूरि सेवाश्रम संस्थान, कुशल वाटिका, बाडमेर
- श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी ट्रस्ट, बसवनगुडी, बैंगलोर
- पू. खान्देश शिरोमणि गुरुवर्या श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री मुनिसुव्रतस्वामी जैन देरासर एवं दादावाडी ट्रस्ट, कान्ति मणि विहार, आडगांव–नाशिक
- श्री भूरचंदजी प्रकाशचंदजी चंपालालजी जितेन्द्रकुमारजी मोहित आशिष दिव्यांश धारीवाल, चौहटन–बाडमेर
- मातुश्री मोहिनीदेवी ध.प. सूरजमलजी छाजेड की प्रेरणा से सौ. कांतादेवी जगदीशचंदजी, खुशबू नितेशकुमार, सौरभ छाजेड परिवार, हरसाणी–इचलकरंजी
- मातुश्री पिस्तादेवी के आशीर्वाद से श्री ऋषभलालजी मांगीलालजी केसरीमलजी अमृतलाल अभयकुमार बेटा पोता छगनलालजी छाजेड, सिवाना–इचलकरंजी–पाली
- मातुश्री ढ़ेलीदेवी ध.प. श्री पीरचंदजी वडेरा की स्मृति में श्री बाबूलालजी किशनलालजी चम्पालालजी भूरचंदजी गौतमचंदजी वडेरा परिवार, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
- श्री आशारामजी वख्तावरमलजी खेमचंदजी लालचंदजी सुरेशकुमारजी सचिनकुमारजी मयूरकुमारजी नाहटा, सिवाना–इचलकरंजी–नागपुर
- स्व. मातुश्री परमेश्वरीदेवी स्व. पिताश्री सुल्तानमलजी बोहरा की पावन स्मृति में घेवरचंदजी ओमप्रकाशजी अशोककुमारजी सुरेशकुमारजी दिनेशकुमारजी रतनपुरा बोहरा भिंयाड वाले, बाडमेर–इचलकरंजी
- मातुश्री सुकीदेवी देरामचंदजी की प्रेरणा से दीपचंदजी नेमीचंदजी शांतिलालजी मगराजजी रमेशकुमारजी भंसाली, समदडी–इचलकरंजी–सूरत
- मातुश्री श्रीमती देवी ध.प. श्री रिखबदासजी छाजेड की प्रेरणा से अशोककुमार परमेश्वरीदेवी पवनकुमार रितिककुमार दर्शनकुमार छाजेड बाडमेर–इचलकरंजी
- श्रीमती भंवरीदेवी नेमीचंदजी की प्रेरणा से श्री जगदीशचंदजी संपतराजजी रमेशचंदजी जसराजजी बाबुलालजी छाजेड, बाडमेर–इचलकरंजी

– मातुश्री स्व. मोहनीदेवी ध.प. स्व. श्री राणामलजी मेहता की स्मृति में बाबुलालजी भूरचंदजी सम्पतराजजी मांगीलाल सवाई अंकित मेहता, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
– श्रीमती पारसीबाई रतनचंदजी सौ. किरणबाई प्रकाशचंदजी सचिन जिनेश समृद्ध चौपडा बिलाडा वाले, हैदराबाद
– संघवी श्री माणकचंदजी सौ. सुशीलादेवी पुत्र अरूणकुमार सौ. कवितादेवी विवेककुमार सौ. डिम्पलदेवी पुत्र पौत्र श्री वरदीचंदजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी–अहमदाबाद
– श्री देवीचंदजी रतनलालजी छोगालालजी नरेशकुमार मुकेशकुमार कपिलकुमार विकासकुमार वडेरा, बाडमेर–इचलकरंजी
– मातुश्री स्व. बबरीदेवी ध.प.केसरीमलजी की पुण्य स्मृति में मातुश्री ढ़ेलीदेवी ध.प. स्व. शिवलालचंदजी की प्रेरणा से पुत्र बाबुलालजी ओमप्रकाशजी पारसमलजी छाजेड {कवास वाले} बाडमेर–इचलकरंजी
– श्री भंवरलालजी सौ. सुआदेवी पुत्र ओमप्रकाश सौ. सुमित्रादेवी अशोककुमार सौ. संगीतादेवी बेटा पोता श्री विरधीचंदजी छाजेड, बाडमेर–मुंबई
– स्व. श्रीमती पानीबाई लक्ष्मीचंदजी स्व. श्रीमती पवनबाई मांगीलालजी श्रीमती डाली हेमन्तजी श्रीमती अर्चना संदीपजी परमार, कोयम्बतूर–बाली
– सांचोर निवासी बोहरा पारसमलजी हंजारीमलजी पुत्र श्री बाबुलालजी घेवरचंदजी मोतीलालजी, विनस मेटल कॉर्पो. मुंबई
– स्व. जावंतराजजी हस्तीमलजी मांगीलालजी नरसिंहमलजी गौतम विक्रम हिदान बोहरा परिवार केरिया वाले, सांचोर–मुंबई
– मातुश्री ढेलीदेवी की स्मृति में शा. संपतराजजी लूणकरणजी समकित हिमांशु बेटा पोता माणकमलजी हीरालालजी रामजियांणी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
– भाई स्व. श्री हेमराजजी घेवरचंदजी, स्व. श्रीमती शांतिदेवी धर्मपत्नी श्री घमडीरामजी की स्मृति में मोतीलालजी पारसमलजी बेटा पोता प्रतापमलजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी–बैंगलोर
– श्री मीठालालजी सौ. पुष्पादेवी पुत्र महावीरकुमार अरूणकुमार पौत्र ध्रुव हर्ष चिराग लूंकड, गढसिवाना–इचलकरंजी
– पूजनीया साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया साध्वी श्री श्रद्धांजनाश्रीजी म. {बेबी म.} की पावन प्रेरणा से उनके चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री जैन संघ, गुलाबनगर, जोधपुर राज.
– श्री लहरचंद भाई शाह सौ. श्रीमती मधुबेन शाह मूल कच्छ वर्तमान उज्जैन निवासी श्री लहरचंदभाई के 75वर्ष पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में, गदग
– शा. पन्नालालजी गौतमचंदजी रतनचंदजी पारसचंदजी पुखराजजी धर्मचंदजी अशोककुमारजी कवाड परिवार फलोदी–तिरूपात्तूर

- श्री हिन्दुमलजी मटकादेवी पुत्र पुखराज सुरेशकुमार भरतकुमार नरेशकुमार बेटा पोता हमीरमलजी लूणिया धोरीमन्ना–चेन्नई
- शा. सुगनचंदजी राजेशकुमारजी संजय आनन्द अभिषेक अरिहंत बरडिया, ब्रह्मसर छबडा– चेन्नई
- पू. माताजी म. श्री रतनमालाश्रीजी म. के आशीर्वाद से पिताजी श्री भंवरलालजी की पुण्य स्मृति में श्रीमती मोहिनी देवी पुत्र ललितकुमार राजकुमार कैलाशकुमार गौतमचंद संकलेचा रासोणी परिवार, पादरू–चेन्नई–हैदराबाद
- श्रीमती सुआदेवी पूनमचंदजी भवानीदेवी पुखराजजी राजेश सुरेश दिनेश छाजेड, पादरू–मुंबई–चेन्नई–दिल्ली
- शा. मुकनचंदजी तीजोदेवी, लूणचंद नरेन्द्रकुमार–स्नेहादेवी लक्ष्यकुमारी दिव्याकुमारी कवाड परिवार, पादरू–चेन्नई
- श्रीमती बदामीदेवी नेमीचंदजी, श्रीमती चन्द्रादेवी–राजेशकुमारजी सामिया रसिक सैहल कटारिया परिवार, पादरू–चेन्नई
- श्रीमती मथरादेवी हरखचंदजी गुलेच्छा की पुण्य स्मृति में श्रीमती पुष्पादेवी–मोहनलालजी अशोक भरत मुकेश गोलेच्छा परिवार, पादरू–विजयवाडा
- श्री शीतलनाथ भगवान एवं दादा श्री जिनकुशलसूरि ट्रस्ट, पादरू राज.
- श्री मदनलालजी राजेन्द्रकुमारजी विक्रमकुमार महेन्द्रकुमार मुकेश नरेश बेटा श्री रिकबचंदजी दांतेवाडिया, एस. आर. एस., मांडवला–चेन्नई
- शा. महेन्द्रकुमारजी राजेश–श्वेता, विनय–महिमा, ईशांत व जिनय कोठारी परिवार, फलोदी–चेन्नई
- शा. बाबुलालजी सौ. हंसाबेन, राकेश–ममता, तीर्थस तीर्था पुत्र पौत्र मणिलालजी डोसी, मंडार–चेन्नई
- संघवी अशोककुमारजी विनोदकुमारजी महावीरकुमारजी किरणकुमार श्रीपालकुमार विमलकुमार महिपाल रियांशवीर गोलेच्छा परिवार, जीवाणा–चेन्नई
- श्री चन्द्रप्रभु जैन श्वेताम्बर मंदिर, शूले, चेन्नई
- श्री संभवनाथ श्वेताम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, वडपलनी, चेन्नई
- शा. वीरेन्द्रमलजी–सौ. शांतादेवी, आशिष–दीपा, दर्शन बेटा पोता पारसमलजी सायरकंवर कोचर मेहता परिवार, जैतारण–चेन्नई
- शा. जवरीलाल पदमकुमार प्रवीणकुमार अनिकेत सिद्धार्थ टाटिया परिवार, टाटिया फाउण्डेशन, चेन्नई
- श्री तमिलनाडु खरतरगच्छ संघ, चेन्नई
- श्रीमती स्व. रूपीदेवी तोगमलजी की पुण्य स्मृति में श्रीमती कमलादेवी भीखचंदजी एवं श्रीमती दुर्गादेवी स्व. बाबुलालजी सागरोणी गोलेच्छा परिवार पादरू–हैदराबाद
- प. पू. कुलदीपिका साध्वीवर्या श्री विनयांजनाश्रीजी म.सा. के द्विवर्षीय वर्षीतप के पूर्णाहुति एवं प. पू. प्रियमंत्रांजनाश्रीजी म.सा. की बडी दीक्षा निमित्त स्व. मदनचंदजी बरडिया, चूले चेन्नई

– शा. सांकलचंदजी जगदीशकुमार अशोककुमार अमितकुमार सम्यक् बेटा पोता श्री बादरमलजी रासोणी संकलेचा, पादरू– हैदराबाद
– पूजनीया पार्श्वमणि तीर्थ प्रेरिका गुरुवर्या श्री सुलोचनाश्रीजी म.सा. तपोरत्ना श्री सुलक्षणाश्रीजी म.सा. की सुशिष्या पू. साध्वी श्री प्रियस्वर्णांजनाश्रीजी म.सा. आदि ठाणा 4 {चातुर्मास 2015} की प्रेरणा से श्री कुंथुनाथ जैन श्वेताम्बर मू.पू. संघ, सिन्धनूर {कर्णाटक}

## श्रुत समाराधक

– पू. खान्देश शिरोमणि गुरुवर्या श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री जैन श्वे. मू.पू. संघ जलगांव की श्राविकाओं की ओर से
– श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, हैदराबाद
– श्रीमती मोहिनीदेवी भंवरलालजी मांगीलालजी कुशलकुमार संखलेचा, फलोदी–अक्कलकुआं
– श्री प्रकाशचंदजी पंकजकुमारजी मनिषकुमारजी महावीरजी भंडारी, सोजतरोड–इचलकरंजी
– श्री मांगीलालजी ललितकुमार बेटा पोता खीमराजजी भीखचंदजी छाजेड, रामसर–इचलकरंजी
– श्री संपतराजजी सौ. चंचलदेवी पुत्र अभिषेककुमार रवीन्द्रकुमार बाबेल, बिजयनगर
– मातुश्री मोहिनीदेवी की प्रेरणा से श्री ओमप्रकाशजी रमेशकुमारजी सुनिलकुमारजी बैदमुथा, कवास वाले–इचलकरंजी
– श्रीमती पुतलाबाई इन्द्रभानजी पुत्र शा. पृथ्वीराजजी पौत्र चेतनकुमारजी बोरा, नाशिक रोड
– शा. पुखराजजी दिनेशकुमार उगमराज पुत्र पौत्र उदयचंदजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी
– श्रीमती शांताबेन हरखचंदजी बोथरा, सांचोर–मुंबई
– पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की प्रेरणा से स्थापित श्री मणिधारी महिला मंडल, इचलकरंजी
– पू. मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म. की दीक्षा के उपलक्ष्य में शा. बाबुलालजी सौ. कमलादेवी पुत्र रमेशकुमार पौत्र मंथनकुमार लूंकड, मोकलसर–इचलकरंजी
– श्री राजस्थानी जैन श्वे. मूर्तिपूजक संघ, इचलकरंजी
– श्रीमती शांतिदेवी जसराजजी बालड, असाडा–इचलकरंजी
– पूजनीया साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया साध्वी श्री श्रद्धांजनाश्रीजी म. {बेबी म.} की पावन प्रेरणा से उनकी 28वीं दीक्षा तिथि के उपलक्ष्य में एक गुरुभक्त
– मातुश्री धापुदेवी चंदनमलजी पुत्र खूबचंदजी की स्मृति में शा. खुशीरामजी बोहरा हाला वाले, फालना–तिरूपुर
– श्री माणकचंदजी तिलोकचंदजी प्रवीणचंदजी पूनमचंदजी झाबक, फलोदी–कोयम्बतूर

– श्री प्रसन्नचंदजी भरत गर्व गोलेच्छा, भरत एण्ड कंपनी, फलोदी–चेन्नई
– शा. बंशीलालजी प्रकाशचंदजी राजेन्द्रकुमारजी गौतमचंदजी कटारिया, बिलाडा–रेनिगुण्टा
– शा. सुरेशचंदजी दिनेशकुमारजी महावीरचंद गौतम डोशी परिवार, ब्यावर–चेन्नई
– शा. थानमलजी तिलोकचंदजी अशोककुमारजी बेटा पोता शंकरलालजी जावाल वाले, चेन्नई
– श्री नीरजजी जैन धर्म पत्नी श्रीमती सौ. नीतादेवी पुत्र गवीश पुत्री भाविनी जैन नई दिल्ली
– पू. मुनि श्री मलयप्रभसागरजी म. एवं पू. साध्वी श्री प्रियमुद्रांजनाश्रीजी म. की दीक्षा के उपलक्ष्य में श्री बस्तीचंदजी महिपालचंदजी कानूगो, फलोदी–चेन्नई
– श्री मदनलालजी भंवरलालजी बोथरा, बाडमेर–इचलकरंजी
– श्री बाबुलालजी मुलतानमलजी मालू, बाडमेर–इचलकरंजी
– श्रीमती शांतिप्रभा रंगरूपमलजी लोढा, चेन्नई
– श्री दिनेशकुमारजी बाबूलालजी मालू, हरसाणी–इचलकरंजी
– श्री फूलचंदजी टेकचंदजी छाजेड, डुठारिया–पूना
– श्री पारसमलजी सूरजमलजी छाजेड, डुठारिया–पूना
– श्री फरसराजजी महावीरचंदजी सिंघवी, बाडमेर–इचलकरंजी
– श्री विजयराजजी महेन्द्रजी कटारिया, बिलाडा–मैसूर
– श्री मुकेशकुमारजी मोहनलालजी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी
– श्री अशोककुमारजी भंवरलालजी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी
– श्री दिपककुमार मितकुमार कुंकु चोपडा, पचपदरा

# अनुक्रमणिका

मंगलम् — 13

प्रशंसनम् — 14

ये गौरवशाली पृष्ठ — 18

1. महासती सीता — 25
2. महासती शिवा — 141
3. महासती सुभद्रा — 151

## 'Girl' 1 Of The Most Beautiful

*U can feel her dignity as a mother.*

*U can feel her innocence as a daughter.*

*U can feel her care as a sister.*

*U can feel her warmth os a friend.*

*U can feel her Passion as a beloved.*

*Value a 'Girl Child'*

---

## कृपया

- पुस्तक को झूठे मुँह न पढे। • पुस्तक को रद्दी में न बेचें। • पुस्तक की आशातना न करें।
- पुस्तक को जमीन पर न रखें। • पुस्तक को झूठे हाथ न लगावें। • पुस्तक के प्रति श्रद्धाशील बने रहे।

# मंगलम्

सिद्धों को छोडकर सभी का जीवन अपने आप में अधूरा है। वे धन्यभागी हैं, जिन्हें अपने अधूरेपन का बोध हो जाता है। सच तो यह है कि अपने अधूरेपन का बोध होना और पूर्ण होने के लिये प्रयास करना ही सम्यक्त्व की प्राप्ति है।

उन महापुरूषों का जीवन हमारे लिये परम आदर्श हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट आचरण व साधना के द्वारा अपने अन्तर के पूर्णत्व को पा लिया या प्राप्ति के निकट पहुँच गये।

प्रिय मुनि मनितप्रभ की इस नई पुस्तक में उन सोलह महासतियों की कथाऐं हैं, जिन्होंने इन्हीं गुणों के पारगामी होकर पूर्णत्व पाया या पूर्णत्व प्राप्त करने का वरदान पा लिया।

ये कथाऐं केवल कथाऐं नहीं हैं, अपितु जीवन का एक आदर्श है। मन का सुख या शरीर की अमीरी उनके लिये तुच्छ थी, उन्हें प्रेम था तो अपनी आत्मा से, अपनी दृढ़ता से, अपने शील से! सच में आराधना, साधना, संयम, त्याग, समता, सहनशीलता, दृढ़ता, शील... ये वे गुण हैं, जिनसे आराधक निश्चित ही मंजिल को पा लेते हैं।

ये कथाऐं समझौते की कहानियाँ नहीं हैं, ये कथाऐं न्यौछावर हो जाने की कथाऐं हैं। उन्होंने शील पर अपना जीवन न्यौछावर कर दिया... अपने सारे सुख न्यौछावर कर दिये ! शान्त चित्त से इन्हें पढना है और अपनी आत्म जागृति के साथ इन्हें जोडते हुए अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेना है, इसी में पुरूषार्थ की सार्थकता है।

मुनि मनितप्रभ को संयम ग्रहण किये बहुत लम्बा समय नहीं बीता है, पर उसकी संयम-रमणता, संयम-परिपक्वता अपने आपमें अनुमोदनीय आदर्श है। लगातार चलते उसके स्वाध्याय-प्रवाह का ही यह परिणाम है कि वह निरन्तर आदर्श और प्रेरक ग्रन्थों का सर्जन कर रहा है। उसके द्वारा आलेखित जैन जीवन शैली हजारों हजारों लोगों द्वारा प्रशंसित हुई, यह अपने आप में गौरव की बात है।

मेरी कामना है कि उसके द्वारा इसी प्रकार सर्जन श्रृंखला निरन्तर प्रवहमान रहेगी।

जहाज मंदिर, 12 मार्च 2013

मणिप्रभसागर

# प्रशंसनम्

नारी सृष्टि का अनुपम सौंदर्य एवं जीवन का अनूठा माधुर्य है। नारी सृजन–चेतना की प्रतीक है। यद्यपि सृष्टि के निर्माण में पुरूष और नारी, ये दो मौलिक तत्त्व निहित हैं तथापि विश्व संरचना में आधारभूत तत्त्व नारी ही है। सृजनशीलता का यह विशिष्ट वरदान उसे जन्मजात प्राप्त है। पुत्री के रूप में निर्दोष अठखेलियाँ करते हुए माता–पिता के जीवन को सरस बनाना, बहिन के रूप में अपनत्व और स्नेह की सुवास बिखेरना, पत्नी के रूप में समर्पण और शील की उजास भरना, माता के रूप में वात्सल्य और ममता की मीठास भरना, बहु के रूप में सेवा–सहिष्णुता की उष्मा देना, दादी के रूप में संपूर्ण परिवार को परस्पर प्रेम, सामंजस्य, सौहार्द्र और एकता के सूत्र में बांधकर सुसंस्कारों का सिंचन करना, ये सब भारतीय नारी की विविध भूमिकाएँ हैं। इन सब भूमिकाओं को चीवट एवं जीवटपूर्वक निभाना नारी की दीर्घ दृष्टि, धृति और अनुभवपरक शक्ति का सशक्त प्रमाण है।

नारी का सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक गौरवमय पद है – 'मातृपद'। माँ के रूप में वह महान् ऋषि–मुनियों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और साहित्यकारों की ही जन्मदात्री नहीं है अपितु संसार की तीर्थंकर जैसी सर्वोत्कृष्ट कृति के निर्माण का गुरूतर गौरव भी नारी को ही प्राप्त है। कोई महान् माता ही किसी महापुरूष को जन्म देकर अपने मातृत्त्व को महिमामंडित कर सकती है। एक महापुरूष को अपने गर्भ में धारण करने से पूर्व माँ को बहुत तपना और खपना पडता है। एक शिशु को जन्म देकर वह जन्मदात्री कहलाती है परंतु जीवन निर्मात्री तो तब कहलाती है, जब किसी महान् व्यक्तित्व के निर्माण में आधार स्तम्भ बनती है।

सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाली धरती को हम 'माता' के पद से अभिषिक्त करते हैं। धरती माता न केवल निर्मात्री कहलाती है अपितु जीवनदात्री एवं संरक्षणदात्री भी कहलाती है। वह अपने कण–कण से अन्न पैदा करती है, संरक्षण और विस्तार देती है और सबके लिए उसका विसर्जन करके समर्पण और त्याग की खुश्बू बिखेरती है।

माता की भी यही भूमिका है। वह अपनी संतान को न केवल जन्म देती है अपितु शिक्षित–प्रशिक्षित

करती हुई समाज एवं देश की सेवा में हँसते–हँसते समर्पित कर देती है। व्यक्तित्व निर्माण की इस महनीय भूमिका में त्रासदी, कष्ट और बाधाओं को झेलकर भी वह न हताश होती है, न निराश होती है। न कोई गिला शिकवा करती है, न आँसू बहाती है। तर्जना और वर्जना में भी वह अपने सुख का स्रोत तलाश लेती है। उस सुख की तुलना में संसार की शोहरत और दौलत भी उसे तुच्छ और नगण्य प्रतीत होती है।

निश्चित ही माँ की ममता और समता का कोई सानी नहीं हो सकता। वह सच्चे अर्थों में निर्मात्री बनकर नवसृजन के नये स्वस्तिक उकेरती है। कभी पुत्र के रूप में वह धर्मवीर, त्यागवीर, दानवीर, शूरवीर, महावीर का निर्माण करती है तो कभी पुत्री के रूप में जगन्माता त्रिशला, महासती कौशल्या, सीता, चंदनबाला और पाहिनी का।

नारी विश्व की महान् संपदा है तो अपरिमेय शक्ति भी है। इसमें निर्माण की अनोखी कला है तो विनाश की शक्ति भी निहित है। अपनी संतान के लालन–पालन में वह जितनी ममतामयी और वात्सल्यमयी है, सामाजिक बुराईयों के प्रतिकार एवं दानवता के दलन में दुर्गा और चण्डी का रूप भी धारण कर सकती है। उसका हृदय फूल सा कोमल होने पर भी समय आने पर वह तलवार और भाले को उठाकर झांसी की रानी का शौर्य और पराक्रम भी दिखा सकती है।

विद्या, धन और शक्ति, ये तीनों जीवन विकास के मूलभूत तत्त्व हैं। इनकी प्रतीक देवियाँ नारी–जाति का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। विद्या की अधिष्ठात्री माँ शारदा, धन की अधिष्ठात्री माँ लक्ष्मी, शक्ति की अधिष्ठात्री माँ दुर्गा के रूपों में नारी शक्ति ही प्रतिष्ठित एवं पूजित है। विश्व की प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक परम्पराओं में नारी शक्ति की पूजा–अर्चना किसी न किसी रूप में होती ही रही है। वैदिक परम्परा में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वैष्णवी, नारायणी तो जैन धर्म में श्रुतदेवी व शासनदेवियों के रूप में वह अर्चित और आराधित है।

प्राचीन वैदिक परंपरा में याज्ञवल्क्य, अगस्त्य, वशिष्ठ आदि प्रज्ञाशील मंत्र द्रष्टा ऋषियों की भाँति सूर्या, सावित्री, लोपामुद्रा, घोषा आदि परम विदुषी मंत्रद्रष्टा ऋषिकाएें भी हुई हैं। उपनिषद् की गार्गी, रामायण की अनुसूया, महाभारत की सुलम्भा की जागृत अंतःप्रज्ञा पर संपूर्ण नारी जगत् को गौरव है। वैदिक परंपरा की भाँति जैन परंपरा भी विदुषी प्रतिभाशाली नारियों से समृद्ध रही है। युग निर्माता भगवान ऋषभ ने

ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में पुत्र–पुत्रियों में कोई भेद नहीं किया। उन्होंने लिपि की सर्वप्रथम शिक्षा ब्राह्मी को एवं गणित की शिक्षा सुन्दरी को दी। महावीर युग की श्राविका जयंती प्रखर दार्शनिक और तत्व ज्ञानप्रवीणा थी। उसके द्वारा की गयी जिज्ञासाओं का समाधान स्वयं भगवान महावीर ने किया था। नंदराज के प्रधानमंत्री शकडाल की सात पुत्रियाँ और स्थूलिभद्र की बहिने इतनी मेधावी थी कि वे किसी भी अपठित, अश्रुत काव्य, ग्रंथ को क्रमशः एक से सात बार सुनकर अस्खलित रूप से दुहरा देती थी।

प्रकाण्ड पंडित आचार्य हरिभद्रसूरि को प्रतिबोध देने वाली याकिनी महत्तरा थी। हरिभद्रसूरि ने अपने प्रत्येक ग्रंथ में उनका उल्लेख गौरव एवं श्रद्धा के साथ किया है।

उपरोक्त संदर्भों से यह ज्ञात होता हैं कि प्राचीन समय में बौद्धिक विकास और शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय नारी ने अपनी भरपूर क्षमता का परिचय दिया था। 20वीं सदी से आज तक सामाजिक, राष्ट्रीय, औद्योगिक, प्रशासनिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक, तकनीकी, प्रत्येक क्षेत्र में नारी ने आश्चर्यकारी कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

आधुनिक नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के साथ कदम से कदम और कंधे से कंधा मिलाकर जो काम कर रही है, उसकी प्रतिभा और क्षमता का लोहा पूरी दुनिया मान रही है। रूढियों, अर्थहीन परम्पराओं, मानसिक संकीर्णताओं के चक्रव्यूह को भेद कर उच्चतम पदों को हासिल करके उसने अपने अप्रतिम पौरूष, साहस और योग्यता का बखूबी परिचय दिया है।

वर्तमान समाज के दर्पण में नारी के दो रूप प्रतिबिंबित हो रहे हैं – प्रथम रूप है मर्यादा और परंपरा के सांचे में ढला आदर्श रूप। शिक्षित या अशिक्षित परंतु शालीन वेशभूषा, बडे बुजुर्गों का सम्मान करने की भावना, सेवा–सहकार की जीवंत प्रतिमा, अनुशासित, मर्यादित, परिवार के प्रति पूर्ण समर्पित, एक सुघड गृहिणि – यह भारतीय नारी का आदर्श रूप है तो साथ ही एक दूसरा चित्र भी उभर रहा है – उच्च डिग्रियाँ, मोबाईल, कम्प्यूटर, इंटरनेट, जीन्स, मिनी स्कर्ट्स की संस्कृति, जिसने उसे विकृति के गर्त्त में धकेल दिया है।

आज की आधुनिक शिक्षित और प्रबुद्ध नारी पश्चिमी अंधानुकरण में अपनी लोक–लज्जा, मर्यादा, विवेक एवं संस्कारों को ताक पर रखकर दिन–प्रतिदिन उच्छृंखल एवं उद्दण्ड होती जा रही है। को–एजुकेशन, बॉयफ्रेन्ड, पिक्चर, किटी पार्टी, क्लब, होटल की संस्कृति ने नारी की प्रतिष्ठा और मान–मर्यादा को धूमिल

करके उसे नारा बना दिया है। राजनीति के गलियारों में गोते लगाती हुई नारी घर–परिवार के प्रति अपने दायित्व से सर्वथा विमुख हो रही है। आवश्यकता है वह अपने आदर्श और गौरवभरे अतीत के रोशनदान खोलकर निहारें अपना गरिमापूर्ण स्वरूप। अतीत में जंगलों की खाक छानना, दर–दर भटकना, दासत्व का जीवन जीना उसे मंजूर था परंतु अपने शील और सदाचार का सौदा किसी भी किंमत पर मंजूर न था। जिन्होंने अपनी अस्मिता की बलि वेदी पर हँसते–हँसते प्राणों को न्यौछावर कर दिया, वे ही दीपशिखाएँ महासतियों के रूप में इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ बन वर्तमान की प्रेरणा बनी हुई है।

वैसे तो प्रत्येक युग सतीत्व के उजाले से आलोकित होता रहा है परंतु भगवान ऋषभ से लेकर महावीर पर्यंत उज्ज्वल व्यक्तित्व से परिपूर्ण ऐसी सोलह महासतियाँ हुई हैं जिनका जीवन संपूर्ण नारी समाज के लिए प्रेरणा का आलोक बिखेर रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णित सोलह सतियों का जीवन अत्यंत उदात्त, भव्य एवं दिव्य है। महासती सीता, जो राज सुखों में पली–बढी परंतु पलभर में वनवास का कठोर जीवन हँसते–हँसते स्वीकार कर लिया। महासती सुभद्रा ने कच्चे धागे से बंधी छलनी द्वारा कुएँ से पानी निकाला और चम्पा द्वार पर उसका छिडकाव करते हुए न केवल द्वारोद्घाटन किया अपितु कुशंका और संदेह से दुर्गंधित वातावरण को अपनी शील की खुश्बू से सुवासित कर दिया। चन्दनबाला, द्रौपदी, दमयंती आदि सभी महासतियाँ अपने आप में एक–एक इतिहास का उज्ज्वल पृष्ठ है, जिन्हें पढकर नारी जगत का ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति का माथा सहजतः नत हो जाता है।

सोलह महासतियों के सम्पूर्ण कथानक को अपने शब्दों की माला में पिरोया है मेरे प्रिय अनुज प्रज्ञावान् अप्रमत्त साधक मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म.सा. ने। तीन खण्डों मे विभक्त महासतियों का जीवन दर्शन यद्यपि बहुत ही अनूठा और उजला है तथापि मुनिश्री की सधी हुई, मंजी हुई लेखनी का स्पर्श पाकर और अधिक कांतिमान बन गया है। उनकी प्रवाहपूर्ण लेखनी में चमत्कारिक सरसता एवं कमनीयता है, जो पाठक के हृदय को सहज ही मोह लेती है। उनकी स्वाध्याय एवं लेखन यात्रा अनेक पडाव तय करती हुई आज महासती कथानक–लेखन के मुकाम पर पहुँची है। इन क्षणों मे मेरा हृदय गौरव मिश्रित प्रसन्नता से गद्गद् है। अनुज मुनि के साधकीय जीवन के प्रति मेरी असीम शुभकामनाएँ समर्पित हैं। मुनि मनितप्रभजी साहित्य यात्रा के नित नये सोपान तय करते हुए जिनशासन की प्रभावना करें। ओम् शांति ....

साध्वी नीलांजनाश्री

**साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री**

# ये गौरवशाली पृष्ठ

जैन संस्कृति में सत्य और शील की एक अक्षुण्ण एवं समृद्ध परम्परा रही है । इस संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है, धर्म के संस्कारों से अनुप्राणित जीवन शैली है और गौरवपूर्ण विरासत भी है।

पुरूष और स्त्री जीवन रूपी रथ के दो अनिवार्य चक्र (पहिये) हैं । यदि एक चक्र क्षतिग्रस्त हो जाये तो रथ प्रगति की ओर गति नहीं कर सकता। किसी भी पक्षी को आकाश की अमाप ऊँचाइयों का स्पर्श करने के लिये दो पंखों की जरूरत होती है।

पुरूष और स्त्री, दोनों परस्परपूरक हैं, अन्योन्य आश्रित हैं। वे एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनते हैं तो पारस्परिक गौरव का निर्वहन भी करते हैं।

नारी का बचपन पिता की छाँव में बीतता है, युवानी पति के सहारे गुजरती है और बुढ़ापा पुत्र की कृतज्ञता तले संवरता है। इस प्रकार पुरूष स्त्री के सम्पूर्ण जीवन का आधार स्तंभ बनता है तो इसका दूसरा पहलू यह भी है कि हर पुरूष के विकास में स्त्री का अपरिहार्य स्थान है। वह माँ, पत्नी, बहिन, पुत्री आदि भूमिकाओं को सम्यग्रूप से निभाती हुई पुरूष को सर्वश्रेष्ठ सत्ता भी उपलब्ध करवाती है।

नारी कभी मरूदेवा से लगाकर त्रिशला पर्यन्त माँ के रूप में तीर्थंकरों को जन्म देती है, मदनरेखा, प्रभावती, मृगावती के रूप में पति को धर्म का बोध देकर उनका जीवन संवारती है तो कभी ब्राह्मी, सुन्दरी, यक्षा के रूप में भाई को प्रतिबोध देकर अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य निभाती है, इतना ही नहीं, वह अपनी ममता को विस्तृत आकाश देकर पुत्रों को शासन की झोली में सौंपकर आर्यरक्षितसूरि, दादा जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्राचार्य, मणिधारी जिनचंद्रसूरि आदि के रूप में रत्न भी प्रदान करती है।

नारी न तो भोग विलास का साधन है, न अबला और दासी है। वह वात्सल्य की प्रतिमा, संकल्प की देवी और प्रकृति की पावन मंदाकिनी है।

किसी भी देश, समाज या धर्म के निर्माण और विकास में नारी एक महत्त्वपूर्ण घटक है। उसका अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि 'माँ ' बालक का पहला गुरु और गुरुकुल है। जो बालक विद्यालय में अनेक वर्षों में सीखता है, वह माँ की कोंख में पलते-पलते, गोद में खेलते-खेलते और मुस्कान को झेलते-झेलते कुछ वर्षों में ही सीख जाता है।

नारी केवल नारी नहीं है, वह सृष्टि का सौन्दर्य, संस्कारों की सुवास और संस्कृति का संगीत है। शास्त्रकारों ने पुरूष और स्त्री के सात-सात प्रकृति प्रदत्त गुण बताये हैं जिनमें पुरूष को कठोरता का प्रतीक और स्त्री को कोमलता की प्रतिमा कहा है।

पुरूष ने भले ही स्त्री का भरपूर शोषण किया, उसके अधिकारों को छीना, प्रताड़नाएँ दी पर वास्तविकता तो यही है कि स्त्री किसी भी दृष्टि से हेय, तुच्छ, हीन और दीन नहीं है। उसने सदा से पुरूष वर्ग पर उपकार ही किया है।

नारी पुरूष के पाषाण-हृदय, स्वच्छन्द मनोवृत्ति और मानसिक उद्दण्डता को अपने संयत, सौम्य और सहनशील व्यवहार के द्वारा प्रभावित ही नहीं करती अपितु रूपान्तरित भी करती है। अपने स्नेहिल साहचर्य से उसके कठोर स्वभाव को मधुर बनाती है, सेवा, त्याग और शील के माध्यम से उसकी पाशविक जीवन शैली को दैविक शक्तियों में बदलती है। सचमुच स्त्री देवी रूपा है, जो शील और संस्कारों की सुरक्षा में स्वर्गीय संपदा को भी तिनके की भाँति ठुकरा देती है।

प्रस्तुत प्रकाशन नारी के शील से सुवासित, अर्हतों द्वारा प्रशंसित और नरेन्द्रों-देवेन्द्रों द्वारा अर्चित अद्वितीय गरिमापूर्ण दस्तावेज है। जैन धर्म, दर्शन और जीवन अन्य परम्पराओं, धर्मों और सिद्धान्तों से सर्वथा विलक्षण एवं

अनूठा है। यहाँ स्त्री को पुरूष के समान अधिकार दिये गये हैं, वह चाहे तो विवाह करके गृहस्थ धर्म निभाएँ, और चाहे तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धाारण करके मुनि-पथ का चयन करे।

अनादिकाल से प्रवर्तमान इस जैन संघ में हर तीर्थंकर के शासनकाल में हजारों-लाखों की संख्या में श्रमणियाँ एवं श्राविकाएँ हुई हैं। परमात्मा ऋषभ से लगाकर आज तक सतियों-महासतियों की लम्बी परम्परा रही है। अनेक श्रमणियाँ शील के बल पर मुक्ति की ओर अग्रसर हुई तो बड़ी संख्या में सुलसा, रेवती, जयन्ती, मंदोदरी के नाम से सुश्राविका के रूप में प्रसिद्ध हुई।

जैन धर्म में दो प्रकार की सतियाँ हुई हैं। प्रथम स्थान पर वे हैं, जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, और दूसरे स्थान पर वे हैं, जो विपत्ति और मृत्यु भय के क्षणों में भी एक पतिव्रत से चलायमान नहीं हुई।

यद्यपि ब्रह्मचर्य व्रत पालने वाले विजय सेठ, सुदर्शन सेठ, पेथड़ शाह आदि अनेक श्रावक हुए पर उन्हें महासती की तरह किसी भी प्रकार का विशेष अलंकरण नहीं दिया गया। इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों के शासन में शील-सदाचार, त्याग-विराग, धैर्य व सौन्दर्य की स्वामिनी सोलह महाविभूतियाँ हुई जो इतिहास का गौरवशाली अमिट शिलालेख बन गयी।

अब प्रश्न यह है कि सतियाँ सोलह ही क्यों?

यद्यपि गद्य-पद्य रचनाकारों ने सतियों की अलग अलग संख्या बतायी हैं और उनका नामोल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। सतहरवीं सदी में रचित रचनाओं में विशेषतः चौबीस सतियों के नाम ही मिलते हैं। किसी ने स्वरचित ढाल में एक सौ आठ सतियों के नाम लिखे हैं तो किसी ने चौसठ नामों का उल्लेख किया है। वास्तविकता तो यह है कि आज तक हजारों सतियाँ हो चुकी परन्तु साहित्यकारों को जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगी या जिनका पुण्योदय प्रबल था

अथवा जिनका पवित्र चरित्र अधिकतम प्रेरणास्पद लगा, वे सोलह सतियाँ विशेषतः जनप्रिय-जगप्रसिद्ध हो गयी।

आज का लोकमानस सोलह सतियों से अधिक प्रभावित है। नीचे जो छन्द दिया जा रहा है, उसे अनेक लोग अपनी प्रभात-प्रार्थना में शामिल करते हैं-

**ब्राह्मी चंदनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी ।**
**कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ।।**
**कुन्ती शीलवती नलस्यदयिता, चूला प्रभावत्यपि ।**
**पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ।।**

इन सोलह सतियों में से ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला आदि जैन समाज में ही मान्य हैं तो दमयन्ती, कौशल्या, सीता, कुन्ती, द्रौपदी आदि को जैनेतर समाज में भी श्रद्धास्पद स्थान प्राप्त है। कुछ बाल ब्रह्मचारिणी हैं तो कछ गृहस्थ धर्म को निभाती हुई एक पतिव्रता है। सुभद्रा, सीता, द्रौपदी, शिवा आदि के जीवन में शील परीक्षा के कठिन क्षण भी उपस्थित हुए तो कुछ का जीवन सामान्य है। कुछ स्वर्गगामिनी हुई तो कुछ मोक्ष पधारी। कुछ का पूर्वभव वृत्तान्त उपलब्ध है तो कुछ का नहीं।

इन सोलह सतियों में से अधिकांश पारिवारिक पृष्ठ भूमि से भी परस्पर जुड़ी हुई हैं । ब्राह्मा-सुन्दरी और प्रभावती- पद्मावती-मृगावती-शिवा, ये सगी बहिने थी तो मृगावती और चन्दनबाला में मौसी-भाणजी का रिश्ता था । इससे भी अधिक कौशाल्या-सीता व कुन्ती-द्रौपदी में सासु-बहु का सम्बन्ध था ।

सोलह सतियों में से ब्राह्मी और सुन्दरी आदिनाथ प्रभु के शासन में एवं दमयन्ती धर्मनाथ प्रभु के शासन में हुई। कौशल्या व सीता मुनिसुव्रत स्वामी के एवं राजीमती, कुन्ती व द्रौपदी परमात्मा अरिष्टनेमि के शासनकाल में हुई। शेष आठ सतियाँ परमात्मा महावीर के शासन में हुई, जिन्होंने अपनी संस्कार की सुवास से संपूर्ण धर्मसंघ को महकाया।

ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, सुलसा, शिवा, पुष्पचूला, प्रभावती, पद्मावती का आवश्यक निर्युक्ति में, राजीमती का दशवैकालिक निर्युक्ति व उत्तराध्ययन सूत्र में, कुन्ती और द्रौपदी का ज्ञाताधर्मकथांग में, कौशल्या व सीता का त्रिषष्ठिशलाका पुरूष में, मृगावती का आवश्यक निर्युक्ति व दशवैकालिक निर्युक्ति में, सुभद्रा का दशवैकालिक निर्युक्ति में जीवन वृत्तान्त उपलब्ध होता है।

ग्रन्थकारों ने ही नहीं, अनेक कवियों ने भी महासतियों पर कलम चलाकर अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्ति दी है। संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी, मारवाड़ी आदि भाषाओं में अनेक ग्रन्थ निर्मित हुए, जैसे उपदेशमाला, पुष्पमाला, धर्मोपदेश माला, शीलोपदेश माला, दान-शील-तप-भावना कुलक आदि।

एक-एक सती पर अलग-अलग कवियों ने चौपाई, रास, राज्झाय, स्तवन, गीत, ढाल, छंद रचे, जिनसे प्रेरणा लेकर अनेक व्यक्तियों ने अपनी जीवन शैली में संशोधन-परिमार्जन किया।

जैन-निर्माण, गोत्र निर्माण आदि शासन प्रभावक कार्यों की भाँति अभिनव साहित्य निर्माण में खरतरगच्छ का अनुपम स्थान रहा है । इस गच्छ के धुरन्धर प्रकाण्ड विद्वान् मुनिवृंद ने आगम, टीका, न्याय, ज्योतिष, अलंकरण, छन्द, व्याकरण, प्रकरण, नीति, वैद्यक, नाट्य, कर्म, सिद्धान्त, योग, ध्यान, आयुर्वेद, मंत्र, कथा, कोष, दर्शन आदि विषयों पर जिस प्रकार अपनी अजस्र लेखिनी का प्रयोग किया, वैसे ही इन सोलह महासतियों पर भी कलम चलाकर अपनी श्रद्धा एवं उनकी महत्ता को अभिव्यक्ति दी।

16वीं-17वीं-18वीं शताब्दी में हुए आचार्य जिनचन्द्रसूरि, जिनराजसूरि, जिनसमुद्रसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनगुणप्रभसूरि, जिनरंगसूरि, उपाध्याय समयसुन्दर, उपाध्याय कनककीर्ति, उपाध्याय हेमनन्दन, उपाध्याय रघुपति, उपाध्याय विद्याकीर्ति, उपाध्याय धर्मवर्द्धन, जिनहर्षगणि, विनयमेरूगणि, चन्द्रकीर्तिगण, वाचक अमरसिंधु, आसिगु, केशवदास आदि ने शील की सुवास से ओतप्रोत सोलह सतियों पर ग्रंथ, चौपाई, रास, बारहमासा, गीत, धमाल, पद, ढाल, द्रुपद, सज्झाय, स्तवन, स्वाध्याय, काव्य, छंद आदि निर्माण करके अपनी लेखन क्षमता को धन्य बनाया।

इसी कड़ी में खरतरगच्छ विभूषण महामहोपाध्याय श्री समयसुन्दर ने द्रौपदी संहरण चारित्र ग्रंथ एवं गुणविनयोपाध्याय ने नलदमयन्ती कथा चम्पू टीका के द्वारा अपनी आस्था को मधुर स्वर दिये। लेखकों की इस सुदीर्घ नामावली के उज्ज्वल आलोक में यह अत्यन्त स्पष्ट है कि सोलह सतियों का चारित्र पवित्रता से मण्डित रहा है ।

इस सोलह महासती के उपयोगी कथानक को कलेवर विस्तार के कारण तीन खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है । प्रथम खण्ड, जिसका नाम है-**सत्य का अमिट सौन्दर्य,** उसमें चंदनबाला, मृगावती, प्रभावती, कुन्ती, दमयन्ती और सुलसा,के प्रेरणास्पद जीवन-वृत्त का शब्दांकन है । **'शील के अमिट शिलालेख'** नामक द्वितीय खण्ड में सीता, सुभद्रा और शिवा के गौरव-वैभव का प्रस्तुतीकरण है । तृतीय खण्ड, जो **'समय के अमिट हस्ताक्षर'** ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमति, पद्मावती, कौशल्या, द्रौपदी, पुष्पचूला के नाम से प्रकाशित हो रहा है-उसमें की गरिमामयी यशोगाथा का विश्लेषण है।

यद्यपि सोलह की संख्या रूढ-सी हो गयी है पर इनके अतिरिक्त चेलना, ऋषिदत्ता, अंजना, नर्मदा सुन्दरी, मलयासुंदरी, मयणासुंदरी, मनोरमा, मदनरेखा, जयन्ती, रूक्मिणी, सत्यभामा, सुज्येष्ठा आदि का पावन जीवन भी अत्यन्त प्रेरणास्पद है। उनको लेकर एक ग्रन्थ का लेखन करना अपने आप में श्लाघनीय कार्य होगा।

यद्यपि मध्यकाल में मृत पति के साथ चिता में जीवित आहूति देने वाली नारियाँ भी सती के रूप में प्रसिद्ध हुई पर जैन शास्त्रकारों को इस प्रकार से सतीत्व या महासतीत्व को परिभाषित करना मान्य नहीं है।

यदि कोई प्रश्न करें कि हजारों-लाखों-करोड़ों वर्षों पहले हुई सन्नारियों का जीवन-शब्दांकन वर्तमान के संदर्भ में कितना प्रासंगिक है तो प्रत्युत्तर अत्यन्त स्पष्ट है। शील, चारित्र और संस्कारों की आभा से ओतप्रोत इस प्रकाशन की महत्ता आज के इस विकृत, विषम और दुषम काल में अधिक बढ़ गयी है, जब नारी पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करती हुई अपनी अनमोल जीवन संपदा को मामूली, मूल्यहीन और महत्त्वहीन पदार्थों की वेदी पर चढ़ा रही है। नारी

को यह हमेशा याद रखना चाहिये कि उसका अस्तित्व सौन्दर्य की अपेक्षा शील प्रधान है।

उसकी भलाई तो इसी में है कि वह कृत्रिम चकाचौंध से दिग्भ्रान्त न होकर अपनी मर्यादा को समझे एवं उस पथ पर बढ़ने का संकल्प करे, जिस पर चलकर हजारों नारियों ने अनुसरणीय पदचिह्न अंकित किये हैं।

लेखन की इन घड़ियों में मैं उन समस्त ग्रन्थों के प्रति नत-प्रणत हूँ, जिनसे मुझे लेखन-पाथेय प्राप्त हुआ।

पूज्य उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के प्रति सादर विनयावनत हूँ, जिनकी प्रेरणा से ही प्रस्तुत आलेखन संभव हो सका। निश्चित ही उनका सानिध्य चिंतन और मनन का पथ प्रशस्त करता है।

मेरे लगभग हर लेखन का संपादन जिनके द्वारा संपन्न हुआ है, उन प्रज्ञासम्पन्ना साध्वी डॉ. नीलांजना श्रीजी म. को साधुवाद क्या दूँ? इस लेखन के संपादन में उनका श्रम, समय और प्रज्ञा, तीनों का सुन्दर सहयोग मिला है। उनके उज्ज्वल चारित्रमय जीवन की शुभकामनाएँ करता हूँ।

प्रस्तुत प्रकाशन की अपनी महत्ता है और यह महत्ता तब तक बनी रहेगी, जब तक नारी का अस्तित्व विद्यमान रहेगा। अशील का कोहरा जब-जब शील की स्वर्णिम किरणों को आवृत्त करने का खोखला पुरूषार्थ करेगा, तब-तब नारी जीवन के अनूठे हस्ताक्षर नया आलोक एवं नयी दिशा देंगे।

अज्ञतावश जिनाज्ञा विरूद्ध लेखन के प्रति सादर क्षमाप्रार्थी हूँ।

**मणि चरण रज**

**मुनि मनितप्रभसागर**

## शील का एक अमिट शिलालेख

# महासती सीता

प्राणनाथ! मैं आपसे पूछती हूँ कि आपके स्थान पर वन-गमन मेरे लिये अनिवार्य होता तो क्या आप मुझे अकेली विदा कर देते?

रावण! वासना में अंधा बनकर तूं मुझे महारानी पद का प्रलोभन दे रहा है पर मुझे पद की कोई भूख नहीं है। मैं तो केवल श्रीराम की महारानी हूँ और मुझे श्रीराम ही काम्य है।

पंच परमेष्ठी, सूर्य-चन्द्र-तारें, दस दिक्पाल, नवग्रह, ये धरती-आकाश, इस बात के साक्षी हैं कि उठते, जागते, बैठते, सोचते मैंने कभी भी श्रीराम के अतिरिक्त किसी पुरुष की कामना नहीं की है। मेरा शील चन्द्रमा की तरह सौम्य एवं गंगा की तरह पावन है। यदि मैं निष्कलंक और निर्मल हूँ तो यह अग्निशिखा मेरा स्पर्श पाते ही शीतल-जल कुण्ड में परिवर्तित हो जाये, अन्यथा मुझे तत्क्षण भस्मीभूत कर दें।

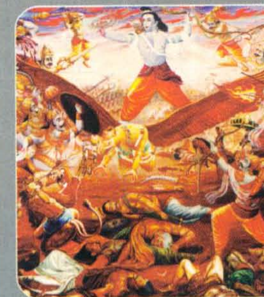

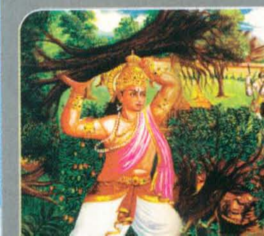

# महासती सीता

आज अयोध्या में विशेष चहल-पहल है। महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र राम की सगाई की रस्म का आयोजन चल रहा है। कैकयी, सुमित्रा और सुप्रभा आनन्दित है पर कौशल्या की प्रसन्नता का तो कहना ही क्या? उसके पाँव जमीं पर नहीं टिक रहे हैं। राम गंभीर है, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न मजाक के मिजाज में हैं।

राम म्लेच्छों को जीतने के साथ-साथ मिथिला नरेश जनक का दिल जीतकर आये। आपसी सहयोग और सद्‌भाव आज दो दिलों की सगाई के प्रगाढ सम्बन्ध में ढल रहा है।

श्री राम की म्लेच्छों पर जीत

श्रीराम अयोध्या के गौरव, मातृ-पितृ भक्त, उदारमना और संस्कार व साहस की अनुपमेय सुकृति है तो सीता शील, सदाचार और सौन्दर्य की जीवन्त प्रतिमा।

मिथिला नरेश को इस सम्बन्ध से न केवल योग्य दामाद मिला है अपितु अपने साम्राज्य-संरक्षण का सुखद सहारा भी मिला है। अयोध्या तो पहले से ही प्रतिष्ठित है पर आज मिथिला का माथा

गर्व से ऊँचा उठ गया है। उसके सम्मान का स्वर बढ़ गया है। दोनों ओर प्रसन्नता है, खुशी की बहारें छाई हुई हैं और बधाईयों का सिलसिला चल रहा है।

राम और सीता की सगाई की चर्चा नारद ऋषि के कानों तक पहुँची। राम की नम्रता, शालीनता और शूरवीरता से वे सुपरिचित हैं पर सीता को उन्होंने न कभी देखा है, न परखा है।

ऋषि के मन में न जाने क्यों सीता को देखने की उत्कंठा जगी। कुतूहलवश वे पहुँच गये सीता के कक्ष में। सीता तो कल्पनाओं की तूलिका से अपने हृदय पर राम का चित्र उकेर रही थी। आनंद के रंग में अचानक भंग पड़ा।

उसने नारदर्षि को कभी पहले देखा नहीं था इसलिये उनके यकायक आगमन से घबरा गयी। बड़ी बड़ी जटाएँ.... लम्बी दाढ़ी....जर्जर काया....असुन्दर आकृति। देखकर वह यहाँ तक भयभीत हुई कि जोर-जोर से 'बचाओ....बचाओ....' चिल्ला उठी। अंगरक्षक दौड़े-दौड़े आये और ऋषिवर को बंदी बना लिया।

रज्जुओं में आबद्ध ऋषि को देखकर मिथिला नरेश सहम गये। तत्काल मुक्त करने का आदेश दिया। ससम्मान उन्होंने उचित आसन अर्पण करके अविनय हेतु पुनः क्षमायाचना की। शाब्दिक क्षमादान हुआ पर हृदय में तो प्रतिशोध की ज्वाला धू....धू जलती रही। वे येन-केन प्रकारेण सीता को संकट में डालने का अवसर खोजने लगे।

क्षण मात्र में घर-परिवार और सम्पूर्ण संसार का त्याग करने वाले महामुनि कषायों का त्याग नहीं कर पाते हैं। कुछ पलों में वस्त्र बदलकर साधु बनने वाले को कभी कभी स्वभाव बदल कर सन्त बनने में जिन्दगी कम पड़ जाती है।

अपमान की आग में जलते ऋषि एक बार रथनुपूरपुर पहुँचे। रथनुपूरपुर वैताढ्य पर्वत पर स्थित था। वहाँ के राजा विद्याधर चन्द्रगति का पुत्र भामण्डल प्रज्ञापुंज था।

उसका सौम्य वदन....गौरवर्ण....छरहरी काया....सुन्दर कायिक वैभव देखा तो अचानक सीता उनकी स्मृति में आ गयी। उन्हें लगा कि प्रतिशोधात्मक प्रक्रिया का यह उत्तम अवसर है। इन दोनों में साम्य भी गजब का है। सीता सौन्दर्य

पुंज और भामण्डल तेजपुंज। दोनों की एक जैसी सौंदर्य-शोभा।

एकान्त में उन्होंने अपनी बात को मनोवैज्ञानिक ढंग से भामण्डल के सामने रखा। उन्होंने सीता के न केवल सौन्दर्य के प्रति आकर्षित किया अपितु जाते जाते सीता का एक रेखाचित्र थमाकर अधिकाधिक सम्मोहन पैदा करने की कोशिश की।

अरे! ये कोई राजकन्या है अथवा देव कन्या। बड़ी बड़ी चमकीली आँखें....गुलाबी होंठ....होठों पर बिखरता निर्दोष हास्य। वह उसके रूप-स्वरूप में इतना खो गया कि उसके बिना जीवन अधूरा-अधूरा लगने लगा।

सम्मोहन की पराकाष्ठा में उसका खाना-पीना छूट गया। रातों की नींद उड़ गयी और दिन का आराम खो गया। धीरे धीरे मन की स्थिति तन पर प्रभाव दिखाने लगी। वह रूग्ण, हताश-उदास, थका-हारा रहने-दिखने लगा।

अकस्मात् शारीरिक अस्वस्थता के कारण चन्द्रगति का चिन्तित होना स्वाभाविक था। वैद्यराज आये, औषधि पान करवाया पर स्थिति में एक प्रतिशत भी फर्क नहीं आया। एक अनुभवी वैद्य ने नाड़ी आदि का निरीक्षण करने के बाद कहा-राजन् ! राजकुमार शरीर के स्तर पर नहीं, मन के स्तर पर बीमार है। अतः चिकित्सा भी उसी स्तर पर होनी चाहिये। जरूर कोई न कोई बात इन्हें मन ही मन सताये जा रही है पर वे प्रकट नहीं कर पा रहे हैं।

राजा को अनुभवी वृद्ध वैद्यराज पर पूरा भरोसा था। उन्होंने हिदायत को अमल में लाते हुए एक दिन भामण्डल से उसके मन की बात पूछी पर भामण्डल संकोचवश चाह कर भी सीता के सन्दर्भ में कुछ न कह सका। इससे नृपति चन्द्रगति की परेशानी ओर बढ़ गयी। आखिर निराशा के स्याह अन्धेरे में आशा की एक किरण फैली। उन्होंने भामण्डल के मित्र के माध्यम से उसके मन को पढा।

अरे ! इतनी छोटी-सी बात के लिये इतना संकोच और संवेदन। वैसे भी मैं उसकी शादी के बारे में सोच रहा हूँ। यदि उसे सीता पसंद है तो मुझे इसमें क्या परेशानी हो सकती है! मैं कल ही मिथिलापति जनक को संवाद भिजवाता

हूँ।

उन्होंने यह सारी बात मंत्री के सम्मुख रखी।

मंत्रीवर ने कहा–महाराज! शायद आपको ध्यान में नहीं है कि सीता की सगाई तो अयोध्यापति श्रीराम से हो चुकी है।

तो क्या हुआ! सीता भामण्डल की होकर रहेगी। श्रीराम के साथ सगाई हुई है, शादी थोड़े ही हुई है। किसी भी तरह जनक को मेरी बात माननी होगी।

वे यदि मेरे प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार लेते हैं, तब तो ठीक है, अन्यथा शक्ति के बल पर यह सम्बन्ध होकर ही रहेगा। चन्द्रगति की शब्दावली में अहंकार का पुट था।

सगाई की बात सुनकर उन्होंने राजपुरोहित के साथ संवाद भेजने की अपेक्षा स्वयं ही वार्तालाप करना उचित समझा। रात्रि में अपने विद्याबल से महाराज जनक को मिथिला से उठाकर रथनुपूरपुर ले आये।

महाराज जनक की जब प्रातः आँख खुली तो बदला–बदला परिवेश पाकर वे आश्चर्य में पड़ गये। अपहरण की बात तभी ख्याल में आयी, जब सीता के संदर्भ में चन्द्रगति ने अपना प्रस्ताव रखा।

जनक चौंककर बोले–यह कैसे हो सकता है, जब सीता अयोध्या के राजकुमार श्रीराम की मंगेतर हो चुकी है। बाला अपने जीवन में एक बार ही जीवन–साथी का चुनाव करती है। आपका प्रस्ताव सर्वथा अतार्किक है।

महाराज! सगाई भले ही हो चुकी पर विवाह तो बाकी ही है न? फिर भामण्डल के समक्ष राम ठहरता ही कहाँ है? चन्द्रगति ने अपना तर्क प्रस्तुत किया।

कैसी नैतिकताविहीन एवं अव्यवहारिक बात कर रहे हैं आप? बिना किसी विशेष कारण सगाई को स्थगित कर

दूं! लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? फिर आप महाराज दशरथ की ताकत को जानते ही हैं।

महाराज दशरथ में कितनी शक्ति है, यह बताने की कोई जरूरत नहीं है। आप मेरे सामर्थ्य को जानते हैं या नहीं ? मैंने तो केवल अपनी मैत्री के कारण यह चर्चा की है अन्यथा जैसे आपको उठाकर लाया हूँ, वैसे ही सीता को भी उठाकर ला सकता हूँ और भामण्डल के साथ उसका विवाह सम्पन्न कर सकता हूँ।

चन्द्रगति के उग्र तेवर देखकर महाराज जनक घबरा गये। तत्काल अपनी बात को बदलते हुए बोले–अरे! आप तो योंहि नाराज हो रहे हैं। मुझे आपके प्रस्ताव को स्वीकार करने में क्या परेशानी हो सकती है पर आप ही जरा गहराई से सोचिये कि इससे मेरी ही नहीं, आपकी भी बदनामी होगी। सारी दुनिया की नजरों में क्या हम हँसी के पात्र नहीं बनेंगे?

चन्द्रगति ने सोचा–विदेहराज बात तो बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। हम स्वयं अपने मान और अपमान के जनक हैं, कोई और नहीं। उन्होंने कहा–महाराज ! एक–दूसरे के सम्मान और सुयश की सुरक्षा और संवर्द्धन अपना आपसी कर्तव्य है। पर मुझे धर्मसंकट से उबारना आपके ही हाथ है। कुछ भी करना पड़े पर यह सम्बन्ध तो जुड़ना ही चाहिये अन्यथा भामण्डल की जिन्दगी का सवाल है। यह सीता के बिना जी नहीं पाएगा।

महाराज ! इसका उपाय तो आपको ही ढुंढ़ना है। मैंने तो केवल आपको भावी से परिचित करवाया है।

ठीक है। मैं ही कोई मार्ग खोजता हूँ। अचानक अपने मानस में स्फुरित योजना को प्रस्तुत करते हुए बोले–राजन् ! मेरे पास दैव्य शक्तियों से परिपूर्ण वज्रावर्त और अर्णवावर्त नामक दो धनुष हैं। आप इन दोनों को ले जाये और उद्घोषणा कर दे कि जो इन धनुषों पर प्रत्यंचा चढा पाएगा, उसी के साथ सीता का विवाह होगा। यह ऐसा निर्दोष उपाय है, जिससे आपकी बदनामी भी नहीं होगी ओर समस्या भी सुलझ जाएगी। राम न प्रत्यंचा चढ़ा पाएगा, न सीता के साथ उसके विवाह का प्रश्न उठेगा।

यद्यपि जनक को चन्द्रगति की बात तनिक भी जची नहीं फिर भी नाजुक हालात देखते हुए स्वीकृति देनी पड़ी। वे

अत्यन्त खिन्न और अप्रसन्न थे पर कर भी क्या सकते थे? चन्द्रगति विद्याओं का स्वामी है। उसके आमने-सामने होना अपयश और अपमृत्यु को बुलावा देना है।

इधर महाराज जनक के अचानक अपहरण से सम्पूर्ण मिथिला में हाहाकार मच गया। चारों ओर खोज करवायी गयी पर महाराज का कहीं भी सुराख नहीं मिला। अब पुनः मिथिलेश को अपने मध्य पाकर सभी को चैन और सुकून मिला।

हालांकि वे चन्द्रगति को सीता के स्वयंवर की स्वीकृति दे आए थे पर यह काम इतना आसान कहाँ था। एक तरफ सीता की अस्वीकृति का प्रश्न था तो दूसरी ओर अयोध्यापति दशरथ की रूष्टता का सवाल।

सीता तक यह संवाद पहुँचाना भी तो कैसे? श्रीराम के साथ मंगनी होने के बाद वह भला स्वयंवर को क्यों स्वीकार करेगी? पर उसको बताए बिना स्वयंवर की घोषणा भी कैसे हो सकती है और अब स्वयंवर से मुकरना भी कोई खतरे से खाली नहीं है।

आखिर महारानी के माध्यम से सीता के सम्मुख स्वयंवर की बात रखी गयी। सुनते ही सीता तो जैसे काष्ठवत् निश्चेष्ट होने लगी। हाथ-पाँव कांपने लगे। आकाश और पाताल घूमते प्रतीत होने लगे। पक्षियों की चहचहाट, कबूतरों की गूटर गूं, मयूरों का नृत्य, पुष्पों का महकना जैसे थम-सा गया।

सीता जैसी आदर्श, संस्कारी और समझदार कन्या के लिये यह एक बहुत बड़ा संकटकाल था। सगाई होने के बाद स्वयंवर का समारंभ। मैं जब रोम-रोम से श्रीराम को सर्वात्मना समर्पित हो चुकी हूँ फिर कैसा तो स्वयंवर और कैसा नूतन पति-चयन? प्रश्न ही नहीं उठता।

सीता की असामान्य स्थिति देखकर माँ विदेहा का दिल पसीज गया।

पुत्री! तुझे इस प्रकार चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारे पिताजी को कह देती हूँ कि यह स्वयंवर नहीं

होगा। तेरी भावनाओं को वे कभी भी आहत नहीं होने देंगे।

माँ! तुम ही कहो, क्या आदर्श कन्या के लिये पुनः वर चयन की प्रक्रिया उचित है?

नहीं बेटी! तूं निश्ंिचत रह। तेरी इच्छा के विरूद्ध कुछ भी नहीं होगा। यह सुना तब कहीं जाकर सीता की जान में जान आयी।

दूसरे दिन महारानी विदेहा ने सीता को अपने पास बुलाकर कहा–पुत्री ! मैंने तेरे पिताजी से स्वयंवर की मनाही कर दी है पर तूं नहीं जानती कि वे बहुत बड़े संकट में फँस गये हैं। इसके साथ अपहरण से लगाकर स्वयंवर तक का सारा वृत्तांत कह सुनाया।

सीता अब द्विधा में फँस गयी। एक तरफ शील सम्पन्न संस्कारी कन्या के जीवन की बात थी, दूसरी और जन्मदाता पर टूट पड़ने वाली आपत्तियों की संभावना। कुछ पलों तक वह मौन रही। चिन्तन के सागर में डूबी तो समाधान के मोती बाहर लेकर ही आयी–माँ! तूंने मुझे पहले यह सारा घटनाक्रम क्यों नहीं कहा? मुझे यदि पता होता तो मैं कल स्वयंवर से इन्कार न करती। मैं पिताजी की मजबूरी को अच्छी तरह समझ रही हूँ। मैं उनकी इस समस्या को हल नहीं कर सकती तो क्या हुआ, मेरे कारण दूसरी आपत्ति का कोई तूफान न आये, इतना तो मेरे हाथ में है ही। तुम पिताजी से कह दो कि सीता के स्वयंवर के लिये आपको परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। मेरा मन कहता है कि स्वयंवर में प्रत्यंचा चढाने वाले श्रीराम ही होंगे। पर कदाचित् दूसरा निर्णय आता है तो यह स्वयंवर केवल औपचारिक रस्म होगी। मैं श्रीराम के सिवाय अन्य पुरूष की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकती। मुझे मृत्यु स्वीकार्य है पर संकल्प को खण्डित करना नहीं।

विदेहराज जनक महारानी विदेहा के मुख से सीता के द्वारा स्वयंवर की स्वीकृति सुनकर आधी चिन्ता से मुक्त हुए। यद्यपि राम के अतिरिक्त अन्य पुरूष–वरण की स्थित में मृत्यु का संकल्प सुनकर उनकी आत्मा कांप उठी पर

आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि सीता जैसी शील सम्पन्न बाला से अन्य कोई अपेक्षा हो भी नहीं सकती थी।

समस्या की एक घाटी अभी भी अवशिष्ट थी। पहले उन्होंने महामात्य को अयोध्या भेजकर समस्या से अवगत करवाने का विचार किया था पर यकायक उनकी मानसिकता बदली। क्यों न मैं ही जाकर वार्ता कर लूं। इससे न केवल समस्या को समझने में आसानी रहेगी अपितु सम्मान संरक्षण की भूमिका भी स्पष्ट हो जाएगी।

बिना किसी पूर्व सूचना के मिथिलेश जनक के आगमन से महाराज दशरथ स्वयं चौंके बगैर न रहे। यद्यपि उन्हें स्वयंवर मान्य नहीं था पर दूसरा कोई चारा भी तो नहीं था। राम को सीता के स्वयंवर का संवाद सुनकर अचरज हुआ पर वे घबराये नहीं। धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ा लेने में उन्हें अपने बल-कौशल के प्रति पूर्ण विश्वास था। लक्ष्मण की मन:स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न थी।

अपने आवेश को प्रकट करते हुए लक्ष्मण बोले-जब सीता पर श्रीराम का अधिकार हो चुका है तब स्वयंवर रचाने वाले आप कौन होते हैं? मैं भी देखता हूँ कि कौन-कौन सीता के लिये मुँह धोकर स्वयंवर में आते हैं। एक-एक को मैं पाताल में नहीं पहुँचा दूं तो मेरा नाम लक्ष्मण नहीं।

लक्ष्मण की लाल आँखें देखकर महाराज जनक घबरा गये। उन्होंने समझाने का प्रयत्न किया। पर लक्ष्मण का क्रोध तनिक भी शान्त न हुआ। स्थिति की गंभीरता देखते हुए आखिर श्रीराम ने हस्तक्षेप किया तब कहीं जाकर लक्ष्मण उपशान्त हुए।

परामर्शपूर्वक महाराज जनक ने सीता के स्वयंवर-तिथि की उद्घोषणा कर दी। मिथिला सोलह शृंगारों से सजने लगी। दिव्य सुगंध से नगर का कोना कोना महक उठा। महाराज जनक ने स्वयंवर के लिये एक विशिष्ट मण्डप की रचना करवायी। नियत तिथि से एक दिन पूर्व पचासों देशों के राजा तथा राजकुमार स्वयंवर का हिस्सा बनने आ चुके थे। राम लक्ष्मण के साथ मिथिला पहुँचे। भामण्डल भी सीता को पाने की आशाएँ संजोये समय पर आ गया था।

विशाल मण्डप में एक वेदिका पर सहस्र देवाधिष्ठित वज्रावर्त एवं अर्णवावर्त, दोनों धनुषों को स्थापित किया गया।

महाराज उच्च सिंहासन पर आसीन हुए। विशिष्ट अतिथियों ने ससम्मान आसन ग्रहण किया। प्रत्याशी राजा एवं राजकुमार अपने निर्धारित सम्मानित स्थान पर बिराजमान हुए। दर्शकदीर्घा जनता से भर गयी। अब तो केवल सीता के आने की प्रतीक्षा थी।

कुछ ही पलों में इन्तजार को विराम मिला और साक्षात् लक्ष्मी की तरह सौन्दर्य की सुवास से महकती सीता ने पाण्डाल में प्रवेश किया।

मुख पर दपदपाता तेज....आँखों में संकोच का सौन्दर्य....चाल में अति गंभीरता....। सभी के नयन सीता पर केन्द्रित थे पर सीता के नयनों में केवल श्रीराम थे।

निर्धारित समय पर स्वयंवर का कार्यक्रम शुरू हो गया और प्रतियोगी के पराजित होने का क्रम भी। वे दोनों धनुष्य कोई सामान्य नहीं थे। दिव्य शक्तियाँ वातावरण में उतर आयी। उन धनुषों से जैसे ज्वालाएँ निकलने लगी।

इसी क्रम में भामण्डल उठा। उसके चेहरे पर शक्ति का अभिमान नाच रहा था। वह उन धनुषों के पास पहुँचे, उससे पहले ही पाँव कांपने लगे। लड़खड़ा कर वहीं गिर पड़ा। मुश्किल से उठा और अपने स्थान पर बैठने में ही भलाई समझी। उसे इस तरह बुरी पराजय का सामना भी करना पड़ सकता है, यह तो उसने सपने में भी नहीं सोचा था। विशिष्ट अतिथियों में बिराजमान महाराज चन्द्रगति की आँखें शर्म से जमीन में धँसी जा रही थी। कल्पनाएँ कुछ भी संजोये पर जीवन में व्यक्ति को अधिकतर सपनों के महल धराशायी होते ही देखने होते हैं।

भामण्डल की असफलता ने अनेक के मन में राम की सफलता के प्रति संदेह पैदा कर दिया पर श्रीराम को अपने इष्टबल और बाहुबल, दोनों पर पूरी श्रद्धा थी।

सभी के नयन राम की ओर थे। सीता हर सांस में श्रीराम की सफलता की शुभाशा संजो रही थी। इष्ट का स्मरण करके राम आगे बढ़े और देखते-देखते तिनके की भाँति वज्रावर्त उठाया और उस पर प्रत्यंचा चढा दी। पूरा पाण्डाल जय-जयकार और हर्षनाद से गूंज उठा। राम दूसरे धनुष की ओर आगे बढते, उससे पहले ही लक्ष्मण ने उस पर प्रत्यंचा चढा दी। सूर्यवंश का किरीट आज पुनः गौरवान्वित हो उठा।

सीता मंद चाल से, संकुचाती-शरमाती हुई आगे बढी। सखी के हाथ के थाल में सजी पुष्पमाला उठायी और श्रीराम के गले में पहना दी। आँखों से आँखें मिली। सीता केवल इतना ही कह पायी-आज से तुम ही मेरे प्राणाधार....मेरी दुनिया के देवता... कहते-कहते वह श्रीराम के चरणों में बिछ गयी। श्रीराम ने उसे कोमल फूल-माला की तरह उठा लिया।

सती सीता का स्वयंवर मण्डप

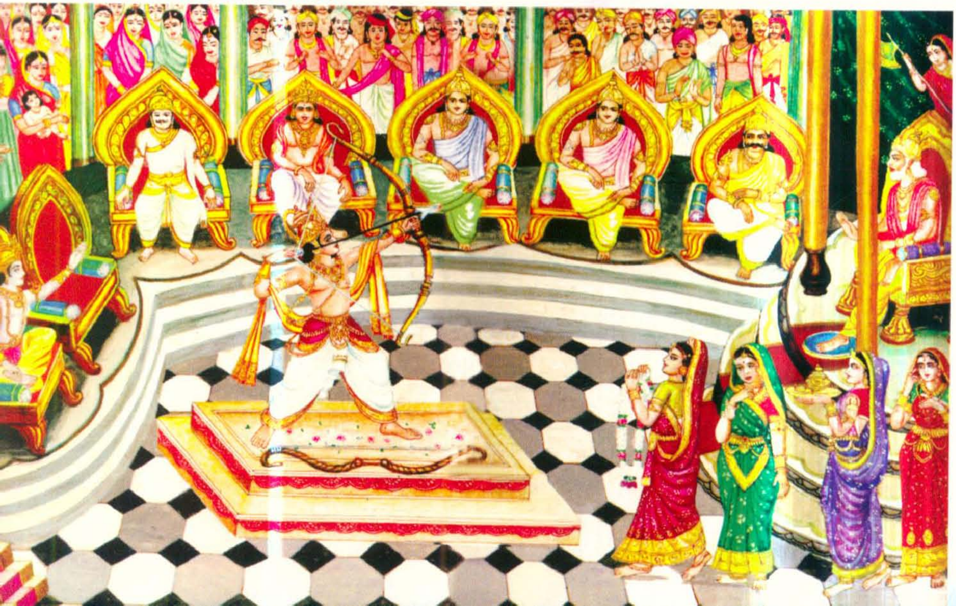

आकाश से देवों ने पुष्प-वर्षा की!

हुए तुषारापात ने उसे अन्दर तक तोड़कर रख दिया। हजार बार चाहने पर भी वह सीता को भूल नहीं पा रहा था। ओह! इतना तीव्र आकर्षण एक भव का नहीं हो सकता। इसके पीछे जन्म जन्मांतरों के संस्कार काम कर रहे हैं।

एक बार अयोध्या में श्रुतसम्पन्न मुनियों का आगमन हुआ। धर्मप्रिय जनता के लिये यह एक श्रेष्ठ अवसर था। मुनिवृंद के उपपात में उनकी वाणी सुनने के लिये दूर-सुदूर प्रान्तों से श्रद्धालु पहुँचने लगे। महाराज दशरथ स्वयं मुनीन्द्र के दर्शनार्थ वहाँ उपस्थित हुए। भामण्डल स्वभाव से धर्म के प्रति अभिरूचि रखता था, वह भी संतों की सेवा में पहुँचा। अनुकूल अवसर पाकर उसने करबद्ध हो मन की व्यथा गुरुचरणों में खोलकर रख दी।

ज्ञान के प्रकाश में स्थिति बिल्कुल स्पष्ट थी। मुनिवर बोले-भामण्डल! संसार में कोई भी कार्य बिना कारण नहीं होता है। वृक्ष का कारण बीज है, वैसे ही तेरे आकर्षण का कारण मोहनीय कर्म है।

वास्तविकता तो यह है कि सीता कोई ओर नहीं, तेरी सगी बहिन है। तुम दोनों साथ-साथ जन्मे हो पर कर्म का संसार अत्यन्त विचित्र है। जन्म के साथ ही तुम बिछुड़ गये। पूर्व जन्म के तुम्हारे किसी द्वेषी देव ने तुम्हारा अपहरण कर लिया। वह तुम्हें मारना चाहता था पर भाग्य को यह मंजूर नहीं था। वह तुम्हें मारने को उद्यत हुआ पर उसका हृदय परिवर्तित हो गया। जागी करूणा ने मृत्यु से बचा लिया पर प्रतिशोध की आग सर्वथा बुझी नहीं थी अतः उसने तुम्हें मिथिला से सुदूर वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित रथनुपूरपुर के राजभवन की छत पर अकेला छोड़ कर चल दिया।

संयोगवश उस समय वहाँ के अधिपति विद्याधर चन्द्रगति का छत पर आना हुआ। वे निस्सन्तान थे। तेजस्वी और सुकुमार शिशु को देखकर उसका मन वात्सल्य से भर आया। ओह ! भाग्य देवता आज मुझ पर मेहरबान हुआ है। वह तुम्हें गोदी में उठाकर शीघ्र ही नीचे आया और महारानी पुष्पवती को सौंप दिया। स्वरूपवान, कोमल और दिव्य शिशु को पाकर उसकी आँखें खिल गयी। पूरी नगरी में पुत्र-प्रसव की बधाई प्रसारित कर दी गयी। कुछ लोगों ने अप्रत्याशित पुत्र जन्म की सूचना सुनकर आश्चर्य प्रकट किया पर उसने गुप्त-गर्भ का स्पष्टीकरण देकर शंका को समाहित कर

दिया।

तुम्हारे ललाट की तेजस्विता देखकर चन्द्रगति ने तुम्हारा नाम भामण्डल रखा। इस प्रकार तुम मिथिला से दूर रथनुपूरपुर में सुविधाओं की रेलमपेल के बीच पले और बड़े हुए।

इधर मिथिलापति जनक का पुत्र जन्म का आनन्द पलभर में आक्रन्दन में बदल गया। तुम्हारे यकायक अपहृत हो जाने से महारानी विदेहा को भारी आघात लगा। चारों तरफ तुम्हारी खोज करवायी गयी पर तुम कहीं भी न मिले। आखिर मन को मनाकर उन्होंने सीता पर दुगुना स्नेह बरसाते हुए पालन-पोषण किया।

भामण्डल! जन्म से तुम भाई-बहिन साथ-साथ थे पर कर्म-योग से इतने वर्षों तक अलग-अलग रहे। तुम दोनों भले ही इस सम्बन्ध से अनजान थे फिर भी भाई-बहिन के रिश्ते ने तुम्हें सीता के प्रति गहराई से आकृष्ट किया।

आद्योपांत वृत्तान्त सुनकर भामण्डल की आँखें शर्म से झुक गयी। अरे! पवित्र रिश्ते में मोह का ये कैसा उन्माद ! भामण्डल अविलंब अयोध्या की युवरानी प्यारी बहिन सीता के पास पहुँचा।

बहिना! हो सके तो इस अधम भाई को माफ कर देना। मैं तुम्हारे लावण्य की आसक्ति के अंधेरे में भटका पर तूंने शील और संस्कार के उजाले में मार्गदर्शन कर महापाप से बचा लिया। सीते! तुम धन्य हो। तुम्हारा अटूट संकल्प बल धन्य है। कहते हुए भामण्डल सीता के चरणों में झुक गया।

मुनि कर अमृतमयी देशना सुनकर दशरथ का दीक्षा-संकल्प

सीता ने तुरन्त भाई को उठाते हुए कहा-भैया! भूल तेरी नहीं है, कर्मों की विचित्रता की है। जो हुआ, उसे भूल जाओ। सुबह का भूला शाम को घर लौट आये तो भूला नहीं कहलाता। पर तुम नहीं जानते भैया! आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ। मुझे बिछड़ा भाई मिलाने वाले मुनीन्द्र के उपकार को कभी भी भूल नहीं पाऊंगी। बहिन की जिन्दगी में भाई से बढ़कर प्रिय व्यक्ति और कौन हो सकता है? कहते कहते सीता का कण्ठ भर आया। भामण्डल भी भावविह्वल हुए बिना नहीं रहा। प्रेमाश्रुओं ने मिलन के पलों को बधा लिया।

भामण्डल सीता से मिलकर सीधा श्रीराम के पास पहुँचा। चरण-स्पर्श कर आशीष लिया। साले और बहनोई का मधुर वार्तालाप हुआ। विद्याधर चन्द्रगति और दशरथ मित्रवत् गले मिले। रानी पुष्पावती, कौशल्या आदि का माधुर्ययुक्त संवाद हुआ। सीता भी रानी पुष्पवती के चरणों में झुकी। पुष्पवती ने उसे हृदय से लगा लिया। जैसे स्नेह की गंगा में आसक्ति, कालुष्य, वैर-विरोध, प्रतिशोध का शोधन हो गया। सम्बन्धों का पर्यावरण प्रसन्नता से महक उठा।

भामण्डल का अपहरण

अब प्रवचन का समय हो चुका था। जनमेदिनी मुनिवर को सुनने के लिये बेताब थी। मुनिश्री ने प्रवचन में संसार की निस्सारता बताते हुए संयममय जीवन की सार्थकता प्रतिपादित की।

प्रवचन क्या था, मानो हृदय परिवर्तन की जादू भरी छड़ी। कईयों ने व्रत, नियम ग्रहण किये, कईयों ने राग-द्वेष और क्लेश के बबूल को समूल उखाड़कर जीवन में प्रेम के मधुर बीज वपन का संकल्प किया।

विद्याधर चन्द्रगति और महारानी पुष्पावती के हृदय का तो जैसे आमूलचूल परिवर्तन हो गया। भामण्डल को राज्यभार सौंपकर वे मुक्ति पथ के पथिक बन गये। महाराज दशरथ की वैराग्य ग्रहण की भावना प्रबल हो उठी-क्या इस जीवन का सार कुटुम्ब-कबीला और संपत्ति के विस्तार में है? नहीं, नहीं...अब मुझे अध्यात्म की दुनिया में जाना है। ये सारे पद बंधन है, मुझे निर्बंध जीवन जीना है। मन की अभिलाषा कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा और सुप्रभा के सामने रखी।

महाराज दशरथ...और दीक्षा! उन्हें अपने कानों पर ही भरोसा नहीं हुआ। मोहग्रस्त मन निर्मोही बनने की भला कैसे आज्ञा देता। पर महाराज दशरथ के अडिग संकल्प के आगे सभी को झुकना पड़ा। अब एक तरफ श्रीराम का राज्याभिषेक होना था, एक तरफ महराज दशरथ की विदाई थी। आनंद और पीड़ा का मिला जुला अवसर। जुदाई और बधाई का अनुपम संगम।

घटित हो रहा यह घटनाक्रम कैकयीपुत्र भरत को अब तक अज्ञात था। ननिहाल से लौटने पर महाराज दशरथ की प्रव्रज्या के समाचार सुनकर वे भीतर तक हिल गये। सुप्त वैराग्य के संस्कार जाग उठे। उन्होंने भी पिताश्री के साथ अणगार बनने का निर्णय कर लिया।

कैकयी अभी एक आघात नहीं सह पायी थी कि दूसरा वज्रपात हुआ। महाराज की विरह-वेदना का कड़वा घूंट पीने का साहस भले ही जुटा लिया पर पुत्र भरत का वियोग सह पाना उसके बलबूते के बाहर की बात हो गयी। दिन-रैन नयन बरसने लगे पर भरत का फौलादी संकल्प न बदला। संयम की श्रेष्ठता जानने पर भी राग मार्ग-अवरोधक बन रहा था। चिन्तन की ऊर्मियाँ मोह की चट्टानों से टकरा टकराकर जैसे निष्प्राण हो गयी।

वह किसी भी बहाने भरत को राजभवन में रोकना चाह रही थी पर रास्ता नहीं सूझ रहा था। आखिर उसे समाधान प्राप्त हो गया। उसकी प्रिय दासी मन्थरा ने महाराज दशरथ से धरोहर रखे वरदान के रूप में भरत के राज्याभिषेक की बात कही। युक्ति कैकयी के गले उतर गयी।

महाराज दशरथ की हालत शोचनीय बन गयी। न उगलते बने, न निगलते। कैकयी की यह मांग उन्हें सर्वथा अनुचित लगी। वास्तविक अधिकारी राम को नजरअंदाज करके भरत का राजतिलक करना उन्हें किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं लग रहा था पर अब क्या हो सकता था। तीर कमान से निकल चुका था। जैसे-तैसे हृदय को कठोर करके उन्होंने वचन-संपूर्ति की स्वीकृति दे दी।

भरत माँ कैकयी के प्रति आक्रोश से भर गये। अग्रज के स्थान पर स्वयं का राजतिलक! उन्होंने तुरन्त महाराज दशरथ के सानिध्य में पहुँचकर बंधुवर श्रीराम को राज्य देने का दृढ़ निवेदन किया। दशरथ ने कैकयी के मुँह मांगे वरदान की बात पुनः पुनः दोहराकर अपनी असमर्थता प्रकट की। पर भरत अपने आग्रह पर डंटा रहा।

आखिर बड़े भैया के रहते मेरा राज्यभिषेक कैसे हो

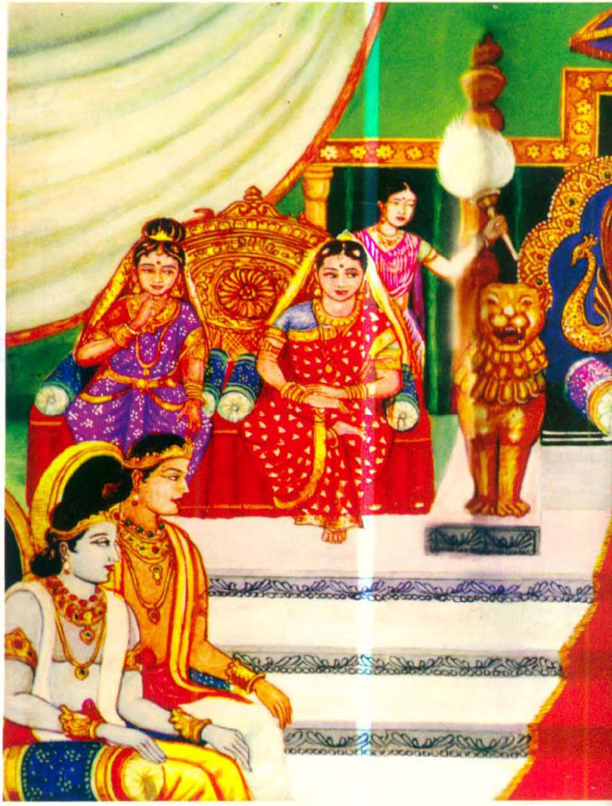

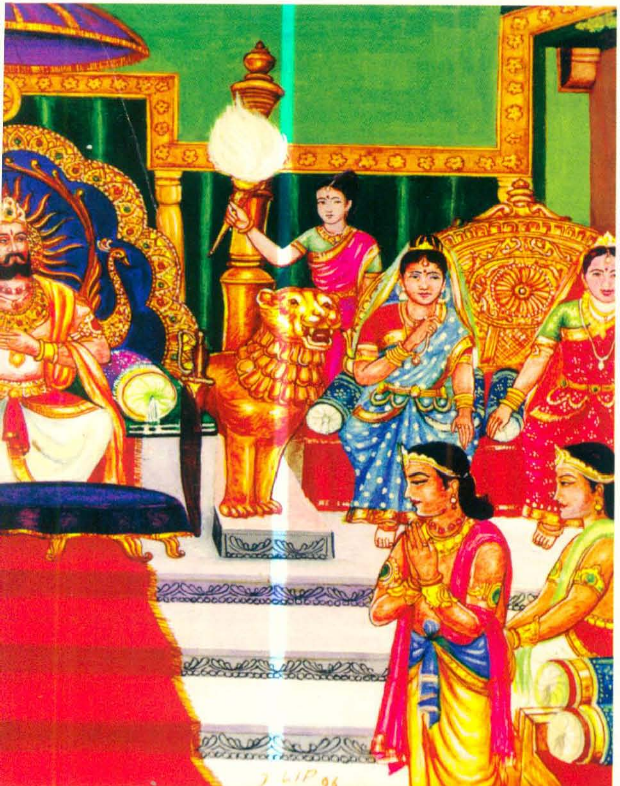

अयोध्यापति दशरथ का मनमोहक दरबार

सकता है! स्थिति जटिल बन गयी। भरत राज्यभार लेने को तैयार नहीं और महाराज दशरथ को वरदान वापस खींच लेना मंजूर नहीं।

श्रीराम ने स्थिति की गंभीरता से आकलन करते हुए कहा–यदि मेरे रहते भरत को राजतिलक अस्वीकार्य है तो मेरा वन में चले जाना उत्तम मार्ग है । उन्होंने अपना निर्णय दो पल में सुना दिया पर यह संवाद भरत के लिये अत्यन्त दुःखदायी था। वह ज्येष्ठ भ्राता के पाँव पकड़कर निर्णय बदलने का बार–बार आग्रह करने लगा पर श्रीराम अच्छी तरह समझ रहे थे कि मेरी उपस्थिति में भरत राजपाट नहीं लेगा, ऐसी स्थिति में पिताश्री को वचन–भंग का दोष लगेगा। यह सूर्यवंश की उज्ज्वल परम्परा पर काला धब्बा होगा। अतः श्रीराम अपने निर्णय पर अटल रहे। भरत के हृदय का अनुनय अस्वीकार हुआ।

सीता का हृदय तो जैसे आज घुंघुरू बांधकर नृत्य कर रहा था। पतिदेव का राज्याभिषेक होगा। वे अयोध्यापति बनेंगे और मैं महारानी! गुलाब–सा खिलता मुखड़ा और हर्ष–विभोर हृदय। जैसे–जैसे अभिषेक का मुहूर्त्त निकट आ रहा था, त्यों त्यों सीता के रोम–रोम में मीठी गुदगुदी और

अद्‌भुत आनंद छा रहा था। घटनाक्रम ने जिस ढंग से अपना रूख बदला और राज-तिलक में जो अनपेक्षित परिवर्तन हुआ, उससे सीता के सपनों का महल क्षणार्ध में धराशायी हो गया।

राम कह रहे थे-प्रिये! अब वानप्रस्थ की ओर प्रस्थान करने की घड़ियाँ आ गयी हैं।

सीता को दूसरा झटका लगा पर उसने बड़ी सहजता से पूछा-क्या यह महाराजश्री का आदेश है?

नहीं सीते! यह मेरा अपना निर्णय है। जैसी भरत की मानसिकता है, उसके अनुसार मेरे रहते वह राज्याभिषेक नहीं करवायेगा, ऐसी स्थिति में पिताश्री के सामने वचन-असिद्धि की कठिनाई पैदा हो जाएगी। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण महाराज पर किसी प्रकार का आक्षेप लगे। जनता में उनकी अप्रतिष्ठा हो। वन-गमन के अप्रत्याशित निर्णय से सीता को आघात तो लगा था पर वह उसे अपनी गंभीर बुद्धि और सुझबुझ से सहन ही नहीं कर गयी अपितु उसे अखिन्न भाव से बधा भी लिया।

अब आर्यपुत्र से न कोई तर्क-वितर्क था, न प्रश्न-प्रतिप्रश्न। जो उनकी राह-चाह, वहाँ मेरी स्वीकृति।

सीता ने कहा-स्वामिन् ! हमें कब प्रस्थान करना है?

राम ने कहा-देवी! तुम यहीं रहो। तुम्हारे लिये कठिन है वन-वन घूमना, आकाश की छत के तले रैन बसेरा करना, फलाहार करके दिन काटना, कष्टों के बीच जीना। फिर यह प्रवास एक-दो दिन का होता तो कोई चिन्ता नहीं होती। बहुत लम्बा है यह प्रवास।

प्राणनाथ! मैं आपसे पूछती हूँ कि आपके स्थान पर वन-गमन मेरे लिये अनिवार्य होता तो आप क्या मुझे अकेली विदा कर देते?

देवी! जो तुम कह रही हो, वह मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ। पर तुम कोमलांगी हो। क्या कष्टों के कांटों से

तुम्हारी काया छलनी छलनी नहीं हो जाएगी?

क्या आपने महासती दमयन्ती और अंजना के कथानक सुने-पढे नहीं? क्या वे विघ्नजेत्री नहीं बनी। मैं जानती हूँ कि आपको मेरी चिन्ता होना अत्यन्त स्वाभाविक है पर मेरा संकल्प है कि मेरा जीना और मरना आपके साथ है। यदि आप फूल से खुश्बू को, जल से ठंडक को अलग कर सको तो सीता से श्रीराम को अलग कर सकते हो। राम सीता के मुख पर चमकते दिव्य नूर को देख रहे थे।

अग्नि परीक्षा से गुजरे बिना कुंदन ने कभी भी अपनी चमक-दमक नहीं पायी है। कष्टों का यह इम्तिहान मेरे भाग्य को चमकाने वाला है। फिर दुनिया में भला ऐसा कौनसा कार्य है, जो विश्वास, साहस और विधेयात्मक दृष्टि से साधा न जा सकता हो? फिर मैं अपनी काया को वज्र के समान इतनी मजबूत और कठोर बना लूंगी कि कोई भी कठिनाई मुझे पराभूत नहीं कर सकेगी।

देवी! मुझे पता है कि महलों की सुख-सुविधाओं का तुम्हें कोई मोह नहीं है। तुम्हें अभीष्ट है तो केवल और केवल राम। मेरे साथ तुम चल दोगी तो माता कौशल्या की सेवा कैसे हो पाएगी? फिर तुम्हारे यहाँ रहने से उनको काफी समाधि मिलेगी। हम दोनों का वनगमन कहीं माँ को तोड़कर न रख दे, यह सोचना भी नितान्त जरूरी है।

स्वामिन्! माताजी की सेवा करना मेरे जीवन का स्वर्णिम सौभाग्य है। उसके लिये मेरी तनिक भी अस्वीकृति नहीं है परन्तु मेरी अनुपस्थिति में भी उनकी सेवा में कोई कमी नहीं आने वाली है। भैया लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न उनका पूरा ध्यान रखते हैं, माता सुमित्रा आदि भी पूरी तरह सजग हैं। फिर कदम-कदम पर परिचारिकाओं की सौहार्द्र सेवाएँ उपलब्ध हैं। फिर भी उन्हें मेरी अपेक्षा हो तो पूछ कर देख लीजिये। मैं उनकी सेवा में सहर्ष रूक जाऊंगी। सीता ने अत्यन्त सहज हो सनम्र कहा।

देखो देवी ! पूछा जाएगा तो माताजी मना ही करेगी पर हमारा भी तो कुछ कर्तव्य होता है उनके प्रति!

आर्यपुत्र! कर्त्तव्य से मैंने कभी भी मुख नहीं मोड़ा है पर सेवा और कर्त्तव्य में महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है। अर्द्धांगिनी होने के नाते मेरा फर्ज आपके साथ छाया बनकर चलना है। इस परिवर्तित परिस्थिति में मैं इस कर्त्तव्य को सेवा से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानती हूँ।

आखिर सीता ने राम को मना ही लिया। कोमलांगी का कठोर निर्णय उनके हृदय को छू गया। इतना ही कह पाएं–सीते! तुम्हें पाकर मैं पवित्र, धन्य और कृतपुण्य बना हूँ। निश्चित ही तेरा यह समर्पण मेरे जीवन का अमिट शिलालेख है।

सीता राम के चरणों में नम गयी।

लक्ष्मण ज्येष्ठ भ्राता को अकेले वनवास जाने देते, यह भला संभव कहाँ था। उनके व्यवस्थित/सचोट तर्कों के आगे राम को मौन रहना पड़ा।

अब एक रात महल की, फिर चौदह वर्षों का लम्बा वन–प्रवास ।

नये जीवन की नयी शुरूआत से पहले राम, लक्ष्मण और जानकी, तीनों महाराज दशरथ के निजी कक्ष में पहुँचे। चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। दशरथ ने भावपूर्ण शब्दावली और वात्सल्यसिक्त हृदय के साथ वन गमन की शुभकामना प्रकट की। आशीष की मुद्रा के मध्य भी यह तो स्पष्ट ही था कि इस निर्णय से वे तनिक भी सन्तुष्ट नहीं है। घटनाचक्र जिस रंग और ढंग के साथ तेजी से घूमा था, उससे अधिकार सम्पन्न होने पर भी दशरथ राम को वन–गमन से रोकने में सर्वथा असमर्थ थे। करते भी तो क्या? मजबूरी और लाचारी उनके हृदय को प्रतिपल कचोट रही थी।

आशीर्वाद की मंगल पूंजी ले वे माता कौशल्या के समीप पहुँचे। माँ की भूमिका पर खड़ी कौशल्या के लिये विदायी के ये क्षण प्राणान्त से कम नहीं थे। ज्योंहि राम, लक्ष्मण और सीता चरण–स्पर्श करने को उद्यत हुए, कौशल्या

की आँखों में बंधा आँसुओं का बांध सारी मर्यादाएँ तोड़कर बह चला।

अपने लाल को इस प्रकार वन-गमन के लिए विदा करते हुए भला किस माँ का हृदय पीड़ा से छलनी-छलनी नहीं होता होगा। फिर लक्ष्मण और सीता भी तो उसके हृदय के टुकड़े थे। किसे कहे अपनी व्यथा, दुःख और भीतर का रूदन। प्रासाद का कोना-कोना, हर अणु, हर कंगूरा जैसे मूक रूदन कर रहा था। महाराज स्वयं पीड़ित थे। कौन किसे दिलासा दे....कौन किसके आँसू पोंछे।

राम बोले-माँ! यह रूदन कैसा? हँसते-हँसते विदा करो। जैसे तेरे लिये राम और भरत समान है, वैसे ही राम के लिये राजभवन और वन समान है। रुंधे गले से कौशल्या इतना ही कह पायी-कल्याणमस्तु ! कुशलमस्तु !

सुमित्रा धैर्य की प्रतिमा थी। उसने प्रतिपल जागरूक रहने का मंगल-आशीष दिया। सुप्रभा ने शुभकामनाएँ व्यक्त करते हुए आत्म-विश्वास का भाता थमाया।

कैकयी की मनःस्थिति डांवाडोल थी। अपराध बोध उसके मुख पर छाया हुआ था। यद्यपि भरत को दीक्षा लेने से रोकने के लिये उसने अंगजात का राजतिलक मांगा था पर राम के वनवास की दुर्भावना उसके मन में तनिक भी नहीं थी। पर अब इस घटना को अन्यथा करना भी संभव नहीं था। एक तरफ तीन सदस्यों के वन-गमन का महादुःख, दूसरी ओर जनता में उसकी निंदात्मक-प्रतिक्रिया।

अरे! एक माँ सुमित्रा है, जो राम और लक्ष्मण में कोई भेद नहीं देखती। इतना ही नहीं, अपने पुत्र को सहर्ष-सगौरव ज्येष्ठ भ्राता की सेवा में भेजती है, दूसरी ओर कैकयी है, जो राम का हक छीन कर वनवास के कगार पर लाकर खड़ी कर देती है।

रह रहकर उसे कृत-अपराध के प्रति पछतावा हो रहा था पर तीर कमान से निकल जाने के बाद अब भला क्या हो सकता था। उसे राम और लक्ष्मण का वन गमन जितना व्यथित नहीं कर रहा था, उससे कहीं ज्यादा कष्टों की वीथी

पर चल निकलने की सीता की भावना। नारी को कोई और पीड़ा उद्वेलित करें, न करें, पर एक नारी का इस प्रकार वनवासार्थ तैयार होना पल दो पल के लिये जरूर व्यथित कर जाता है।

कैकयी एवं सीता का संवाद

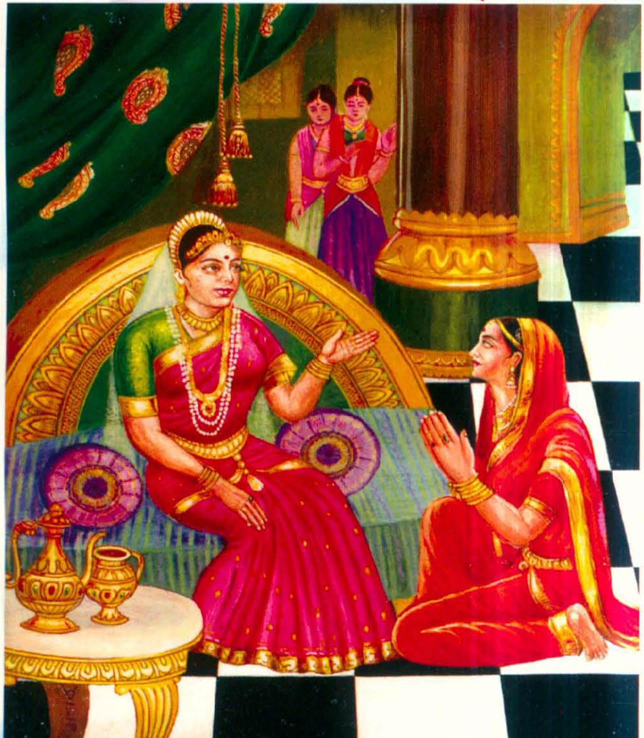

सीता ज्योंहि आशीर्वाद के लिये झुकी, कैकयी का मन भर आया। उसकी मनःस्थिति मुखर हो उठी-सीते! मैं समझ रही हूँ कि मेरे अविचारित कदम ने तुझे कष्टों के सागर में पटक दिया है पर राम के वनगमन की मेरी कोई मंशा नहीं थी। हाय ! मैंने ये क्या कर दिया? पर अब जब राम जा रहा है, तब तुम्हें रोक भी कैसे सकती हूँ। कैकयी के संदर्भ में सीता की मनःस्थिति राम और लक्ष्मण से भिन्न थी।

राम कुछ हद तक कैकयी को वनगमन के लिये जिम्मेदार मानते थे पर गंभीरता की चद्दर ओढे उन्होंने शब्दों से तो क्या, चेहरे से भी अभिव्यक्त होने नहीं दिया था।

लक्ष्मण की सोच बिल्कुल स्पष्ट थी कि भैया के वनगमन में सारा का सारा दोष माता कैकयी का ही है। वे उस पर अप्रसन्न ही नहीं, अत्यन्त क्रुद्ध भी थे। औपचारिकता के नाते उन्हें वनगमन के पूर्व राम व सीता के साथ कैकयी के कक्ष में आना जरूर पड़ा था पर मन तो नाराजगी के कारण आशीर्वाद को तो क्या, मुख-दर्शन को भी टालना चाहता था।

सीता का भावमण्डल बिल्कुल अलग था। उसकी नजरों में कैकयी अभी भी उतनी ही पूज्य और आदरणीय थी, जितनी कि वनगमन के निर्णय से पूर्व।

उसने कहा–माताजी! इसमें मैं किसी को भी दोषी नहीं मानती हूँ, यहाँ तक कि आपको भी नहीं। जो होना होता है, वह होकर रहता है, निमित्त चाहे कोई भी बने। आप किंचित् भी अफसोस न करें।

कैकयी सीता की सहजता से अभिभूत हुए बिना नहीं रही।

फिर माताजी! महल की सुविधाओं, दास–दासियों के अम्बार और सारी अनुकूलताओं के बीच पति–देव की सेवा करना अलग बात है और प्रतिकूलता में प्रसन्नता का नजराना देते हुए सेवा करना बिल्कुल अलग बात है। यह तो मेरे समर्पण की कसौटी है। आप तो बस इतना ही आशीर्वाद दीजिये कि इस कसौटी पर मैं खरी उतरूँ।

ओह! सभी मेरा इन्तजार कर रहे हैं। चलती हूँ।

कैकयी को अपराध बोध तो अभी भी साल रहा था पर वह सीता की चिन्तन–शैली से प्रभावित हुए बिना नहीं रही।

न जाने यह सीता भी किस मिट्टी की बनी हुई है। महलों को तिनके की भाँति छोड़कर चल देती है और आँखों में शिकवा तक उभरने नहीं देती। जरूर यह कोई दैवी आत्मा है। सती सावित्री की तरह पावन है। सुमेरू की तरह अटल–अचल है।

राम, लक्ष्मण और सीता के साथ महाप्रासाद से बाहर निकले तो नभमण्डल उनकी जयकारों से गूंज उठा।

जनसमूह समुद्र की भाँति उमड़ पड़ा था। घर–घर और गली–गली से कितनी ही छोटी–छोटी नदियाँ निकलकर

उसमें समा रही थी। इससे अत्यन्त स्पष्ट था कि राम का नाम उनके दिल और दिमाग के जर्रे जर्रे में किस तरह खुदा हुआ है। वह अयोध्या के भावी नरेश के रूप में राम को ही देखना चाहती है।

राम के पीछे भरत, शत्रुघ्न, सभासद, मुख्य पदाधिकारी विशाल समूह के साथ चल रहे थे।

आँखों में तरलता....हृदय में मंगलकामनाएँ....बिछुड़ने का गम....। प्रकृति भी इस नूतन मंगलमय प्रस्थान से भावाभिभूत हो जैसे आर्द्र और संवेदनशील हो गयी थी।

अयोध्या का कण-कण राम, सीता और लक्ष्मण की जुदाई में रो पड़ा था। क्या फिजाएँ, क्या हवाएँ...। हर वृक्ष....हर पत्र....हर पुष्प, आज उदास था।

नगर की हद आ चुकी थी। राम ने

वन-पथ पर बढते श्री राम-सीता और लक्ष्मण

सभी को लौटने का आग्रह किया। लोगों की सिसकियाँ बंध गयी। आँखें रो पड़ी।

भरत ने पुनः पूर्ण शक्ति के साथ अग्रज से लौटने का निवेदन किया। पूरा जनबल भी उसके भावुक निवेदन के साथ था।

सबल समर्थन ने भरत को विश्वास से भर दिया पर राम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल थे। प्रार्थना नकारी गयी। भरत के विश्वास का तार-तार हो गया। प्रत्यावर्तित होने का मन भला किसका होता पर राम के सशक्त आग्रह ने सभी को लौटने के लिये मजबूर कर दिया।

भरत अत्यन्त व्यथित था। वह दशरथ के चरणों में पहुँचकर भैया राम को बुलाने का दृढ़ता से निवेदन करने लगा। दशरथ ने कहा-मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। कैकयी से ही तुम बात करो। अप्रसन्नमना भरत माँ के पास पहुँचा। तनिक कड़क-कठोर शब्दों में बोला-माँ! तूं मुझे यह तो बता कि आखिर तेरी इच्छा क्या है? क्या तूं यही चाहती है कि आने वाली पीढियाँ मेरे नाम पर थूं....थूं....करती हुई मुझे धिक्कारें, मेरा तिरस्कार करें और कहे कि राजपाट की लोभवृत्ति से भरत ने भाई को वन-वन भटकने के लिये मजबूर कर दिया?

मेरे करोड़ों रोम में से एक रोम में भी राज्याभिषेक की भूख नहीं है। राज्य से जब तुझे इतना ही मोह था तो अपना ही राजतिलक क्यों नहीं मांग लिया ? मुझे भला बीच में घसीटने की क्या जरूरत थी?

कैकयी से कुछ बोलते ही नहीं बना। यद्यपि उसकी सोच थी कि भरत अभी स्नेह और भावावेश में है इसलिये राजतिलक से इंकार कर रहा है। राम के वन जाने के बाद स्वतः स्थिति सुधर जाएगी पर आज तो वह बिल्कुल विपरीत स्थिति देख रही थी।

भरत के शब्दों में पर्याप्त रूखापन और कठोरता थी।

माँ ! तूं जिसे वरदान समझ रही है, वह मेरे जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। फिर तनिक संयत हो भरत

बोले–माँ! यदि तुझे मेरी प्रसन्नता पसंद है तो अभी भी देरी नहीं हुई है। महाराज दशरथ से कहकर भैया राम को वापस बुला ले। यह मेरा अटल निश्चय है कि मैं राज्य कदापि ग्रहण नहीं करूंगा।

ऐसी विकट स्थिति में कैकयी भला क्या करती। महाराज दशरथ के पास पहुँचकर उसने वरदान को वापस लेने का आग्रह किया। महाराज नाराज तो पहले से ही थे। उन्होंने वरदान वापस लेने से इंकार करते हुए कहा–कैकयी! यह संभव नहीं है क्योंकि मैं वर वापस खींच लूं और तुम दूसरी ही समस्या पैदा कर दो तो। इतना सिरदर्द मोल लेने के बाद अब तुम राम को बुलाकर राज्याभिषेक करने का कह रही हो, यह मुझे जरा भी ठीक नहीं लगता।

अन्ततः कैकयी और भरत की आग्रहपूर्ण मानसिकता को देखते हुए राम के राजतिलक का निर्णय किया और शीघ्र ही महामात्य को राम को सादर लाने के लिये भेजा।

इधर राम, लक्ष्मण और सीता ने एक घने वृक्ष के तले अपना पहला पड़ाव डाला।

आज लम्बी पद–यात्रा नहीं हो पायी थी, स्वजनों व प्रजाजनों से विदाई लेते–लेते विलम्ब जो हो गया था। सीता के चेहरे पर थकान के चिह्न उभर आये थे पर उसकी प्रसन्नता और संकल्प–श्रद्धा उत्तरोत्तर प्रवर्धमान थी। अपराह्न हो चुका था। सेब, केला आदि फलाहार करके थकान उतार रहे थे कि रथ–चक्रों की ध्वनि कानों से टकरायी। कुछ पलों में अयोध्या के महामात्य सामने से आते दिखायी दिये।

कुशल क्षेम के उपरान्त उन्होंने अयोध्येश का संदेश सुनाया। उनका अत्याग्रह था पर राम की दृष्टि में प्रत्यावर्तन किसी भी अपेक्षा से उचित नहीं था, अतः उन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया।

निराश वदन और उदास आँखों के साथ महामात्य लौट गये।

लक्ष्मण ने प्रश्न किया–भैया! कैकयी और भरत का निवेदन आपने टाल दिया?

भरत ! मैंने वनवास न कैकयी के कारण स्वीकार किया है, न भरत के कारण। मेरे इस निर्णय के पीछे केवल पिताश्री के वचन-पालन के प्रति जागरूकता है। वापस लौट गये तो भावी पीढ़ी क्या कहेंगी।

सीता ने कहा-लक्ष्मण भैया! तुम्हारे बड़े भैया बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। व्यक्ति को सिद्धान्त प्रिय होना चाहिये। जो पल में इधर और पल में उधर होता हैं, उसे लोग बिन पेंदे के लोटे की भाँति अस्थिर कहते हैं। मुझे तो लौटने की बात कम ही जंचती है, फिर निर्णय तो इनको ही करना है।

राम गंभीर थे। कुछ क्षणों बाद वे लक्ष्मण और सीता की ओर अभिमुख होकर बोले-मैं यद्यपि सिद्धान्तवादी हूँ तथापि यदि कोई गलत कदम उठ जाए और बाद में दिशा बदलनी पड़े तो भी मुझे कोई संकोच नहीं होता। मैं जहाँ तक

**अयोध्या में पुनः लौटने का निवेदन एवं श्रीराम द्वारा अस्वीकृति**

सोचता हूँ, मैंने कोई गलत निर्णय नहीं लिया है। मैं रघुकुल की पीढ़ियों से चली आ रही गौरवपूर्ण परम्परा का वचन-रक्षा की खातिर पीछे हट जाना बहुत बड़ा अपराध समझता हूँ। इस संदर्भ में तुम दोनों क्या सोचते हो?

हम तो आपके अनुचर हैं। फिर आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। अन्यथा लोग कहेंगे-देखो! सिंहासन के लिये श्रीराम ने पितृ-वचन को महत्वाकांक्षाओं की वेदी पर चढ़ा दिया। आखिर तीनों की सहमति एक बिन्दु पर ही थी कि उठे कदम किसी भी दम पर न पीछे मुड़ेंगे, न लौटेंगे।

इधर भरत आँखों में आशा लिये इन्तजार कर रहे थे। बड़े भैया का नहीं आना उनके लिये अत्यन्त कष्टकारी था। उन्होंने माँ कैकयी से कहा-माँ ! राजतिलक का वर जब तुमने मांगा है, तब तुम्हें जाकर भैया राम को अवश्य मनाना चाहिए। कैकयी को भरत का तथ्य तर्कसंगत लगा। वे दोनों वन में रथ-यात्रा करते हुए श्रीराम के सम्मुख प्रस्तुत हुए।

भरत ने भावविह्वल होकर लौटने की विनम्र प्रार्थना की। उस समय जैसे उनका रोम-रोम, अंग-अंग, आँखें, शब्द, भाषा, हाव-भाव, सब कुछ आत्मीयता और विनम्रता से छलक उठे। कैकयी ने तो भरत से भी ज्यादा आग्रह करते हुए पुनः लौटने की बात कही। श्रीराम दोनों के छलकते हार्दिक निवेदन से भावविभोर जरूर हुए पर अपने निर्णय को नहीं बदला।

माँ ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारे और भरत के लिये बिछोह की ये घड़ियाँ दु:सह्य हैं पर जैसे-तैसे इस कड़वे घुंट को आखिर पीना तो पड़ेगा ही।

क्या तुम माँ की एक बात नहीं मान सकते? कैकयी व्यथित मन से बोली।

माँ! तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करती। लौटने में प्रश्न मान-अपमान का नहीं, पितृ-वचन की रक्षा का है। यदि मैं तुमसे रूठकर वनवास का निर्णय लेता तो बात कुछ और होती पर ये निर्णय महाराजश्री के प्रति कर्त्तव्य की दृष्टि से लिया गया है। अब मैं यदि पुनः महलों में चलता हूँ तो क्या अयोध्येश की गरिमा को धक्का नहीं लगेगा?

कैकयी जब लम्बी चर्चा के बाद राम को मना नहीं पायी तो थक हारकर आखिर सीता से कहा–सीता! तुम ही कुछ कहो।

सीता की झोली में उछलकर जब प्रश्न आ ही गया तो उसने लम्बे मौन को तोड़ते हुए कहा–माता ! लौटने, नहीं लौटने का निर्णय स्वयं आर्यपुत्र का है। पर मेरा तो व्यक्तिगत विचार यही है कि राज्याभिषेक भैया भरत का ही होना चाहिये।

औचित्य–अनौचित्य, मान–अपमान, सारे प्रश्न एक तरफ हैं। मुख्य प्रश्न तो पिताश्री के वचनों की रक्षा का है। और यह कार्य आर्यपुत्र का ही नहीं, आपका, मेरा और सभी का हैं। मेरा तो मानना है कि भरत के द्वारा राज्याभिषेक की अस्वीकृति और आर्यपुत्र के निर्णय की अडिगता के बीच महाराजश्री चैन और सुकून से दीक्षा कभी नहीं ले पाएंगे।

दो क्षण विराम लेकर रामोन्मुख होकर सीता ने कहा–स्वामिन्! आप इन मंगल पलों में अपने ही हाथों भरत का अभिषेक क्यों नहीं कर देते?

राम ने कहा–सीते ! तुम बिल्कुल ठीक कहती हो। जाओ! जल–कुंभ भर लाओ।

भरत बोला–भैया! इस गुरुतर उत्तरदायित्व को निभाने में मैं सक्षम नहीं हूँ। फिर मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है राजतिलक करवाने की। इतने में सीता जलकुंभ लेकर आ गयी।

भरत मना करते रहे। राम ने जल–कलश हाथ में लिया और भरत का अभिषेक कर दिया। भरत श्रीराम के चरणों में गिर पड़े। अश्रुधारा बह चली। राम ने भरत को दिल से लगा लिया।

आशीर्वाद का बल लेकर भरे हृदय से भरत महल में लौटे। इधर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता की वन यात्रा वनवासियों के लिये वरदान बन गयी।

उनके पास उतनी ही सामग्री थी, जो अत्यावश्यक हो और जितनी स्वयं उठाकर चल सके। कुटिया बनाना, फल और ईंधन लाना, रात्रि संरक्षण, ये सारे काम लक्ष्मण बखूबी संभालते।

श्रीराम द्वारा भरत का अभिषेक

गृहस्थ जीवन के आवश्यक कार्य सीता संभाल लेती। राम का काम था-जन-जन में जागरण की ज्योति जलाना। इसमें सीता अपूर्व सहयोग करती।

श्रीराम और सीता के आगमन की सूचना पाकर निकटवर्ती आदिवासियों का आनन्द बढ़ ज़ाता। वे राम की शरण में आते। कभी कभी राम स्वयं निरीक्षणार्थ घर-घर पहुँचते। नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक कर्त्तव्यों के साथ-साथ उन्हें जीवन-कला, आत्म-संतोष और मानसिक शान्ति के गुर सीखाते। कुछ ही दिनों में वातावरण श्रीराम और सीता का सुखद साहचर्य-सानिध्य पाकर प्रसन्नता से खिल उठता।

सीता नारी-वर्ग के मध्य पहुँचती और अन्धविश्वासों की अंधेरी गलियों से बाहर निकलने का शंखनाद करती। उन्हें अपनी असीम क्षमताओं से परिचित करवाती हुई स्वावलम्बन, संस्कार और शील-मर्यादा की सीख देती।

शरद, ग्रीष्म और वर्षा, तीनों ऋतुओं की विविधता में

उनका मन एकविध ही था। वहाँ केवल और केवल बसंत का सुखद सौन्दर्य बिखरा हुआ था।

दिन बीत गये। रातें बीत गयी। दिन-रात के पंख लगाकर कितने ही वर्ष बीत गये। एक तरह से उनकी वन-यात्रा जन-जागृति और आत्म-शान्ति की यात्रा बन गयी। चलते चलते वे दण्डकारण्य तक पहुँच गये। वहाँ एक दिन नयी घटना यों बनी।

लक्ष्मण खोजी प्रकृति के व्यक्ति थे। नया देखना, जानना, सुनना, सुनाना, ये सब उनकी मानसिक खुराक थी। आदतन वे वन-वीथियों पर टहल रहे थे कि अचानक उनकी नजर एक खड्ग पर पड़ी। वह बांस बीड़ पर टंगा हुआ था।

चौंकते हुए वे स्वाभिमुख होकर कह उठे-अरे! ऐसा दिव्य खड्ग! आज तक मेरी नजर में अनेक खड्ग आए, अनेक का मैंने परीक्षण भी किया। पर यह तो अद्भुत, अपूर्व है। उस दिव्य खड्ग को धारण कर लक्ष्मण चलने लगे कि मन में आया-अरे! पहले इसकी धार का परिचय तो ले लूँ फिर भैया को दिखाऊँगा।

तत्काल उन्होंने बांस बीड पर खड्ग का प्रहार किया। दूसरे ही पल रक्त-धारा बह चली। लक्ष्मण के लिये यह चौंकाने वाली दर्दभरी घटना थी। धरा खून से भीग रही थी। सिर जमीन पर आ गिरा था, धड़ ज्यों का त्यों बांस पर लटक रहा था।

उनका मन गहरे पश्चात्ताप से भर आया-हाय! मुझसे यह क्या हो गया? ये कौन था? पता चलने पर इसकी माँ पर क्या गुजरेगी? पिता क्रोधाविष्ट हो युद्ध भी कर सकता है?

इतने लम्बे समय तक कोई अशुभ घटना नहीं घटी पर आज मेरे हाथों ये कैसा अपराध हो गया! चिन्तित होते हुए वे सोचने लगे-कहीं भैया राम को इसके बदले किसी विपत्ति का सामना करना पड़ा तो क्या होगा? इसी के इर्द-गिर्द घुमती सोच-सोच में चलते हुए पर्णकुटीर के पास आ खड़े हुए।

सीता ने पुकारा–देवर साहब! अब तक आप कहाँ थे? आपके भैया कब से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लक्ष्मण धीरे से राम के सम्मुख उपस्थित हुए। सदा प्रफुल्लित रहने वाले चेहरे पर चिन्ता, उदासी और व्यथा की रेखाओं को देखकर राम चकित हुए बिना न रहे।

लक्ष्मण ! तुम्हारे मुख का रंग म्लान कैसे हुए जा रहा है? और ये खड्ग कहाँ से लाए?

लक्ष्मण ने घटित घटनाक्रम ज्यों का त्यों सुना दिया।

राम तनिक गंभीर होते हुए बोले–लक्ष्मण ! आज तुमसे अनजाने में बहुत बड़ी गलती हो गयी। यह सूर्यहास खड्ग को साधने की साधना है। इसे सफलतापूर्वक साधने वाला त्रिखण्डाधीश बनता है। बड़ा कठिन है यह महा–अनुष्ठान! वृक्ष की शाखा से दोनों पावों को बांधकर, जमीन की ओर उल्टा टंगे रहना, वह भी बारह वर्ष सात दिन तक बेले–बेले की अखण्डित तपाराधना के साथ। पारणे की व्यवस्था के लिये पहुँचा

वासुदेव लक्ष्मण द्वारा अनजाने में अकृत्य

उत्तरसाधक जब साधक का खण्डित मस्तक देखेगा तो क्रुद्ध अवश्य होगा। वह कभी भी हमसे टकरा सकता है। लक्ष्मण ! आज अनचाहे वैर का बीजारोपण हो गया। हम पर कभी भी कोई भी खतरा मंडरा सकता है।

लक्ष्मण पहले से ही व्यथित, शंकित और चिंतित तो थे ही, अब उनकी चिन्ता कई गुणा बढ़ गयी। निस्तेज मुख, निराश आँखें और चेहरे पर उपसी हुई क्षोभ, सन्देह ओर भय की रेखाएँ।

राम और सीता ने लक्ष्मण को हताश और भयभीत कभी नहीं देखा था।

राम ने लक्ष्मण को सान्त्वना एवं सकारात्मक सोच देते हुए कहा-अरे भाई ! तुमने यह अपराध कोई जानबूझकर तो किया नहीं है, फिर चाहे कोई भी विपत्ति क्यों न आए, हम सक्षम हैं, कंधे से कंधा मिलाकर टकराएंगे।

अभी भी लक्ष्मण उदासी और भयाकुल मानसिकता के चक्र में चक्कर लगा रहे थे।

सीता ने हस्तक्षेप करते हुए कहा-सौमित्र! ऐसे घबराने की क्या जरूरत है? तुम पर तो बड़े भैया की छत्रछाया है। क्या तुम्हें उनके बल-पराक्रम पर भरोसा नहीं? फिर तुम भी तो वीर की सन्तान और वीर के भ्राता हो। भला ऐसी कौनसी शक्ति है, जो राम-लक्ष्मण का लोहा ले सके।

हाँ ! सौमित्र ! यों डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। नियति ने जो लेख लिखा है, वह होकर रहेगा, न मैं उसे अन्यथा करने में सक्षम हूँ, न तूं। सीता व राम के शब्दों ने हताश लक्ष्मण के मन में विश्वास के प्राण फूंक दिये।

आज सूर्पणखा अत्यन्त उल्लसित थी। पुत्र शंबूक की साधना का काल पूर्ण होने में केवल चार दिन जो शेष बचे थे।

वह उत्तरसाधक थी। इन बारह वर्षों की सुदीर्घ तप-साधना की वह साक्षी रही है। वृक्ष से ऊंधा बंधकर सतत मंत्र-जाप में लीन रहना, सर्दी, गर्मी, वर्षा, भूख, प्यास, इन परीषहों को झेलना कोई आसान काम नहीं है। पर अब

उसकी महासाधना फलवती हो रही है, उसका इष्ट पूर्ण होने वाला है।

वह अपने पतिदेव के समक्ष खड़ी अपनी खुशी को व्यक्त कर रही है-सुनो! अपने लाल की साधना सफल हो रही है। आप आज ही भैया रावण, स्वजन-परिजन आदि को संदेश भिजवा दीजिये। कहती हुई वह रथारूढ हो कौचरवा नदी की ओर चल पड़ी। उसके पास पारणे की सामग्री थी। आज पुत्र के पारणा था।

अचानक उसकी दांयी आँख फड़कने लगी। रथ थोड़ी और आगे बढ़ा तो अशुभ संकेत मिलने लगे। अरे ! हर्ष और बधाई के इन पलों में ये अपशकुन कैसे? क्या शंबूक की साधना अपूर्ण रहेगी? क्या वह त्रिखण्डाधीश नहीं बन पाएगा, जैसे वह स्वयं से ही प्रश्न करने लगी।

नहीं नहीं....! ये तो मेरा भ्रम है। न तो उसकी साधना अधूरी रहेगी, न कोई आतंक उपस्थित होगा। जैसे-तैसे मन को समझा-बुझाकर शान्त होने का प्रयत्न करने लगी। तीव्र गति से भाग रहा रथ कुछ ही पलों में नदी के किनारे खड़ा हुआ कि सूर्पणखा पर अकल्पित वज्रपात हुआ। शंबूक का धड़विहीन मस्तक देखकर उसकी वेदना का पार नहीं रहा। वह जोर-जोर से रूदन करने लगी।

अरे! मेरे बच्चे ने किसी का क्या बिगाड़ा था? उसकी जिन्दगी को लूटने से भला क्या मिलना था? मोह विह्वल होती हुई वह हत्यारे को बार-बार कोसने लगी। उसकी नजर जैसे ही पदचिन्हों पर पड़ी, वह उठ खड़ी हुई। ओह! तो ये पदचिन्ह किसी और के नहीं, उस दुष्ट के ही है, जिसने मेरे लाडले को मुझसे छीना है। पर उसे पता नहीं कि उसने जलते अंगारों में हाथ डाला है। प्रतिशोध की ज्वाला में भस्मीभूत न कर दूं तो मेरा नाम सू..र्प..ण..खा...नहीं।

वह पदचिन्हों का अनुगमन करने लगी-अरे! जिसने मेरे पुत्र की हत्या की है, उसने खुद ही अपनी मौत को बुलावा भेजा है। उस हत्यारे को क्या पता कि खड्गसाधक अकेला और दीन-हीन नहीं है। उसकी माँ सूर्पणखा का छल-बल उसके साथ है। फिर पिता खर और चाचा दूषण व त्रिशिरा की शक्ति भी कोई कम नहीं है। मामा लंकापति

रावण, जिसके नाम से ही बड़ी बड़ी शक्तियाँ घुटने टेक देती हैं। अपराधी जब तक जिन्दा है, तब तक मैं चैन की सांस नहीं ले सकती। सोचते-सोचते वह राम-लक्ष्मण की कुटीर के निकट पहुँच गयी।

सबसे पहले उसकी दृष्टि श्रीराम पर पड़ी। उसका छरहरा बदन....गहरी आँखें...भुजाओं में छिपा क्षात्रबल... उन्नत ललाट...चौड़ा सीना....गठिला शरीर....देखते ही जैसे क्रोध काफूर हो गया। उसके अंग अंग में काम-रंग छाने लगा।

अरे! ये कोई मानव है या देवात्मा! ऐसा सौन्दर्य, जो देवों को भी लज्जित कर दें। दो होंठ क्या हैं जैसे मदिरा के दो मादक प्यालें। पर मुझ कुरूपा और कृष्णा को ये क्यों चाहेंगे! सूर्पणखा ने तत्काल रूपपरावर्तिनी विद्या का प्रयोग किया और घुंघुरू छनकाती हुई राम के सामने जा खड़ी हुई। अपने कामुक हाव-भाव व कटाक्ष से राम को आकर्षित करती हुई प्रणय की याचना करने लगी। संतुलित स्वरों में राम ने कहा-देवी ! तुम किसी गलत स्थान पर चली आयी हो।

वह पुनः पुनः आँखों को नचाती हुई कहने लगी-आर्य ! सौन्दर्य का यह फूल सहसा आपकी झोली मे आ गिरा है। उसका तिरस्कार करना आप जैसे बुद्धिमान पुरुष को शोभा नहीं देता।

राम ने कहा- देवी! देखो मैं तो विवाह के बंधनों में बंध चुका हूँ। लक्ष्मण की ओर अंगुली-निर्देश करते हुए कहा-तुम लक्ष्मण के पास जाओ। वही तुम्हारी इच्छा को सफल करेगा।

वह लक्ष्मण के पास पहुँचकर कामभोग की प्रार्थना करने लगी। आर्य! मेरी भावना का सम्मान करें ।

लक्ष्मण चौंका-इस गहन वन में षोडशवर्षीया सुन्दरी यकायक कहाँ से प्रकट हो गयी। उसने कहा-कौन हो तुम? कहाँ से आयी हो? और निर्लज्ज होकर इस प्रकार की याचना करते शर्म नहीं आती?

सूर्पणखा ने कहा-आर्य! कहाँ से आयी हूँ और कौन हूँ, ये प्रश्न न केवल बेतुके हैं अपितु नासमझी भरे हैं। आप तो आम खाईये। पेड़ गिनने से क्या लाभ?

पर मैं तुम्हें स्वीकार करने में अक्षम हूँ। जाओ कहीं और अपनी भावना को साकार करो। लक्ष्मण तनिक रूखे अंदाज में बोला।

मादक नजर डालती हुई सूर्पणखा बोली–आर्य! अबला को यूँ न ठुकराएँ। इतने कठोर मत बनिये।

लक्ष्मण ने घूरकर कहा–देखो देवी! तुम राम भैया के पास जाओ। वहीं तुम्हारा काम बन सकता है। मैं तो उनका सेवक हूँ।

सूर्पणखा राम के पास पहुँची। राम ने स्पष्ट इंकार करते हुए कहा–तुम वहीं जाओ। अगर सफलता मिलेगी, तो वहीं मिलेगी। वह लक्ष्मण को रिझाने आयी पर दाल गली नहीं। उसने फिर राम के पास भेज दिया, राम ने लक्ष्मण के पास। इस प्रकार चक्कर काटते काटते दिमाग गरम होने लगा–तो तुम दोनों मुझे मजाक बनाते हो। सर्प की तरह जहर उगलती हुई बोली–बहुत सह लिया मैंने। मेरे अपमान का दुष्फल तुम दोनों को आज और इसी वक्त भुगतना होगा।

लक्ष्मण ने आग में घी डालते हुए कहा–जा! जा! तेरे जैसे बहुत आये और बहुत गये। तूं भला किस खेत की मूली है।

अपने मूल रूप में आकर सूर्पणखा बोली–कौन हूँ मैं? तुम्हें पता नहीं है। मैं सम्राट् खर की पत्नी और रावण-कुंभकर्ण की बहिन सूर्पणखा हूँ। पहले तो मेरे पुत्र की हत्या की और अब मुझे अपमानित किया। तुम्हारी बोटी-बोटी करवाकर कुत्तों को न डलवा दूं तो मेरा नाम

सुर्पणखा द्वारा अनुचित निवेदन

सूर्पणखा नहीं।

लक्ष्मण अच्छी तरह जानते थे कि अबला को मुँह लगाना समझदारी नहीं है पर अनर्गल प्रलाप सहन करे तो भी कितना।

राम पूर्णतः संयत, गंभीर और शांत थे। इधर सूर्पणखा के मुख से चिंगारियाँ और गालियाँ बरसती ही जा रही थी। जीभ तो जैसे गंदी नाली का कीड़ा बन गयी थी।

लक्ष्मण राम के रोकने पर काफी देर सहन करते रहे पर सहनशक्ति की भी आखिर कोई सीमा होती है। क्रोध में लाल-पीले होते हुए लक्ष्मण बोले-तूं अपनी बकवास बन्द करती है कि नहीं। कोई पुरुष होता तो कब की उसकी बोलती बन्द हो गयी होती।

सूर्पणखा ने छिपी हुई कटार बाहर निकाली और लक्ष्मण पर प्रहार किया। लक्ष्मण पहले से ही सावधान था। अपने खड्ग से ऐसा चक्र घुमाया कि कटार नीचे जा गिरी।

सूर्पणखा ! लगता है तेरा काल आ गया है। जिसे भी याद करना होकर ले। तूंने सोये हुए सिंह के मुंह में हाथ डालने की बाल चेष्टा की है। लक्ष्मण का क्रोध विकराल हुआ जा रहा था।

सीता के कर्णकुहरों से लक्ष्मण और सूर्पणखा का वाग्युद्ध टकराया तो वह कुटिया से बाहर आकर खड़ी हो गयी।

राम उठकर तुरन्त सूर्पणखा के पास पहुँचे-चली जा तूं यहां से। लक्ष्मण अब मेरे रोके भी रूकने वाला नहीं है। कहीं वह तुझे दुनिया से अलविदा न कर दे। सामने नाचती हुई मौत को देखकर सूर्पणखा की सांस उपर की उपर और नीचे की नीचे रह गयी। हाथ-पाँव कांपने लगे। वह समझ गयी कि अब भागने में ही भलाई है। वह ज्योंहि तीव्र गति से प्रत्यावर्तित होने लगी कि उसकी नजर सीता पर पड़ी।

अहो ! कैसा अद्‌भुत सौन्दर्य, रूप-रंग, नाक-नक्श! जैसे सुन्दरता की प्रतिमा हो। जाते जाते उसके कदम वहीं ठिठक से गये। देश-काल का भी बोध न रहा। वह सीता का रूप-रस पीने लगी।

अचानक उसके कानों में लक्ष्मण की तीक्ष्ण गर्जना सुनाई दी- ए कुलटे! जाती क्यों नहीं? भाभी की ओर क्या घूर घूर कर देख रही है। सूर्पणखा जैसे पुन: वर्तमान में लौटी और रथ की दिशा में कदम बढ़ा दिये।

सूर्पणखा की आज सारी रात करवटों में बीती। नींद आती भी तो कैसे? रह-रहकर अप्रत्याशित रूप से घटित घटनाक्रम तीर की भाँति हृदय को बींध रहा था। ओह ! राम का रूप और लक्ष्मण का लावण्य। राम की धीरता और लक्ष्मण की वीरता। एक सहज, शान्त और सौम्य बदन, दूसरा तेजस्वी, माधुर्य और सौन्दर्य से भीगा-भीगा नयन-युगल और वह सीता...। जैसे विश्व की सारी सुन्दरता उसमें पुंजीभूत हो गयी हो!

न अलंकार, न राजसी परिधान! न मुकुट, न कोई मणि-मुक्ता-नीलम हार। फिर भी उसकी सौन्दर्य-प्रभा जैसे स्वर्ग की उर्वशी और अप्सराओं को मात दे रही थी। उस रूप-रस का पान करने में मैं भी अपने लोभ का संवरण नहीं कर पायी।

पर आज तो मैं सोलह श्रृंगारों से सजी....वस्त्रालंकारों से अलंकृत थी! कितना नयनरम्य था मेरा रूप-रंग। मेरी आँखों की मादकता....होठों की रसमयता....! ऋषि होता तो वह भी मेरे कटाक्षों से घायल हुए बिना नहीं रहता फिर राम-लक्ष्मण ने इस प्रेम-प्रस्ताव को क्यों ठुकरा दिया? लगता है, वे पारदृष्टा हैं। जरूर मेरे वास्तविक सौन्दर्य को पहचान गये होंगे। कागज का फूल गुलाबी हो सकता है पर गुलाब की सुगंध उसमें कहाँ से आयेगी ?

फिर जिसके पास सीता जैसी सौन्दर्य सम्पन्न सन्नारी है, वह भला मेरे साहचर्य की कामना क्यों करेगा? चन्द्रमा की चाँदनी में नहाने वालों में सितारों की चाह कैसे जगेगी? लक्ष्मण की अस्वीकृति में भी कारण तो सीता ही है। क्या वह सीता से न्यून स्त्री की कामना करेगा? कभी नहीं।

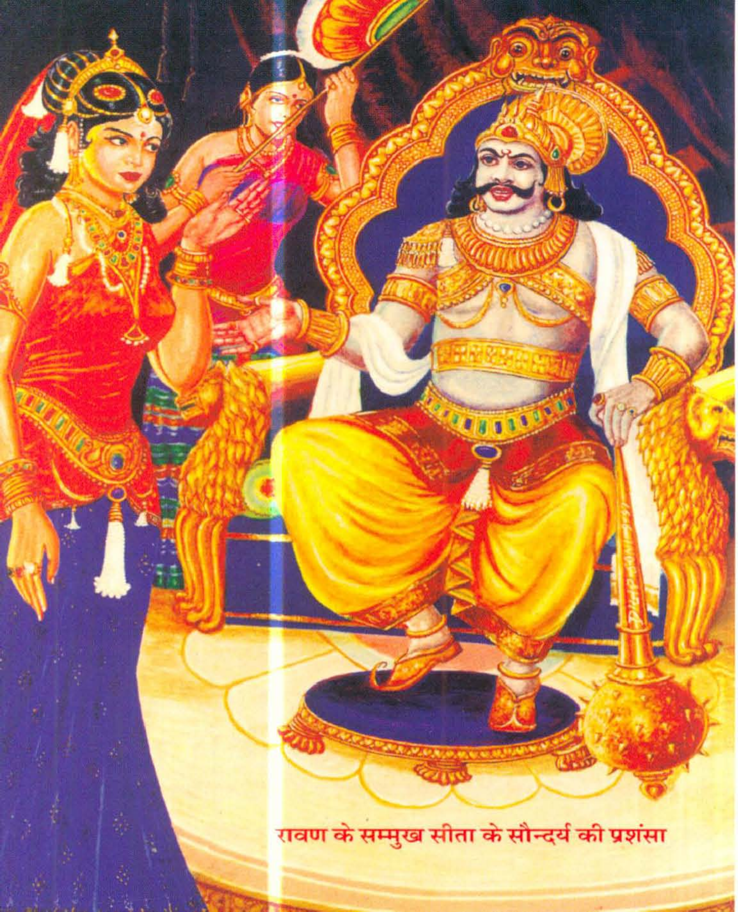

रावण के सम्मुख सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा

राम-लक्ष्मण के द्वारा मेरी हँसी दिल्लगी.... मजाक...तोहीन...अपमान....चिढ़ाने-कुढ़ाने के अंदाज। इन सबका कोई कारण है तो एक मात्र सीता है। उससे अहं को झुकाकर ही मैं चैन की सांस लूंगी।

ये सारी बात मैं महाराज खर को नहीं कह सकती पर शंबूक की हत्या के नाम पर उन्हें जरूर उकसाया जा सकता है। दूषण और त्रिशिरा भी कोई कम पराक्रमी नहीं है।

लक्ष्मण की स्फूर्ति, बल, पराक्रम और चातुर्य देखने के बाद वह खर की सफलता के प्रति संदिग्ध थी, अतः उसने किसी तरह रावण को भी इस बखेड़े में घसीटने की मानसिक संकल्पना तैयार कर ली।

पुत्र शंबूक की हत्या का संवाद श्रवण कर खर क्रुद्ध हुए बिना न रहे। वे युद्ध की तैयारियाँ विशाल पैमाने पर करने लगे। इसके चलते सूर्पणखा भ्राता रावण के पास पहुँची। शंबूक के आकस्मिक महाप्रयाण से रावण को दुःख हुआ।

उसने सान्त्वना देते हुए राम-लक्ष्मण के प्रति नाराजगी व्यक्त की। सूर्पणखा किसी न किसी बहाने राम और रावण को आमने-सामने खड़ा करना चाहती थी। उसने राम-लक्ष्मण के विरूद्ध भड़काने का भरसक प्रयास किया पर सफल न हो पायी।

दूसरे दिन एकान्त पाकर सूर्पणखा रावण के पास पहुँची। वह समझ गयी कि सीता ही एक ऐसा मोहरा है, जिससे मैं 'एक पंथ दो काज' कर सकती हूँ। सीता के सौन्दर्य का विनाश और राम-लक्ष्मण का अन्त!

रावण यों तो अनेक लब्धियों का स्वामी, गुणों का आकर था पर 'स्त्री' उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। जो भी स्त्री अच्छी लगती, उठाकर अपने अन्त:पुर में स्थापित कर देता।

उसने भाई की कमजोर नस पर हाथ रखते हुए कहा-भैया! आपके अन्त:पुर में सैकड़ों रानियाँ-सुन्दरियाँ है पर एक भी सीता की होड़ नहीं कर सकती।

क्या तूंने उसे देखा है? रावण ने सविस्मय पूछा।

हाँ ! हाँ ! तभी तो कह रही हूँ। नयन युगल को आश्चर्य से विस्फारित करके सूर्पणखा ने कहा-क्या बताऊँ भैया! उसका रूप देखकर मैं खुद ठगी सी रह गयी। मैं स्त्री होकर भी उससे आकृष्ट हुए बिना नहीं रही, तो फिर कोई सौन्दर्य पारखी पुरुष देख ले तो उसका क्या हाल होगा, यह तो वही जान सकता है।

रावण के मन में गुदगुदी होने लगी। आँखों में विकार उभर आये। अपनी बात को सूर्पणखा आगे ने बढ़ाते हुए कहा-फिर मैं आपको यह भी बता देना चाहती हूँ कि आपकी जितनी रानियाँ हैं, वे सीता की बराबरी तो क्या करेगी,जबकि उसकी दासी बनने के लायक भी नहीं है, और तो और, भाभी मंदोदरी भी नहीं।

आपके ये सारे ऐश्वर्य श्रीविहीन हैं, अन्त:पुर भेड़-बकरियों का बाड़ा है....। अग्रमहिषी का पट्ट शोभित करने में यदि कोई सक्षम है तो केवल सीता है। केवल त्रैलोक्य सु...न्द...री...सी...ता..। इतना कहकर सुर्पणखा कक्ष से बाहर हो

गयी।

रावण के दिलोदिमाग पर जैसे एक नशा....एक जादू....एक मस्ती छा गयी। अब उसके हृदय सिंहासन पर प्रतिष्ठित थी विश्व की अनिन्द्य सुन्दरी सीता। अपार सम्पदा के बीच भी नितान्त अकेलापन, घुटन और बेचैनी थी।

उसकी आँखों, विचारों, भावधारा....सबके केन्द्र में एक मात्र सीता थी। सूर्पणखा ने उसकी रूप राशि की महिमा भी इसी ढंग से जो गायी थी। उसने अडोल निर्णय कर लिया–सीता को मैं पाकर ही रहूँगा।

खर की युद्ध-तैयारियों का उड़ता-उड़ता संवाद भ्राता-युगल के कर्णपटल से टकराया। शम्बूक की हत्या और सूर्पणखा की चुनौती, इन दो कारणों से संकट का पूर्वानुमान तो था ही कि विपत्ति के बादल कभी भी बरस सकते हैं।

खर विस्तृत हय-गय-रथ-दल-बल के साथ समरांगन में उतर आया था। भय न राम के नयनों में था, न लक्ष्मण के हृदय में।

राम चुनौती स्वीकार कर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो युद्धार्थ समुद्यत हुए कि लक्ष्मण ने रोका–भैया! आप कहाँ जा रहे हैं? फिर बिना रूके ही कहा–आपको जाने की क्या जरूरत है? मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। क्या आपको मुझ पर भरोसा नहीं? लक्ष्मण ने प्रश्नसूचक आँखें राम पर टिका दी।

क्यों नहीं! पूरा भरोसा है सौमित्र! पर तू अकेला और वे चौदह हजार सैनिक। कहीं तुझे कुछ हो गया तो! मेरी बात मान। तूं यहीं रह और तेरी भाभी की सुरक्षा का कर्त्तव्य निभा।

अतिविनम्र पर आँखों में आत्मविश्वास भरकर लक्ष्मण बोले–ये भी कोई बात हुई। कनिष्ठ आराम करें और ज्येष्ठ युद्ध। फिर डर किस बात का, जब आपका आशीर्वाद का कवच प्रतिक्षण मेरा संरक्षण कर रहा है। आप तो बस आज्ञा फरमाइये। खर की सेना को दिन में तारे न दिखा दूं तो मेरा नाम लक्ष्मण नहीं। राम को अनुज पर गर्व हो आया।

भैया-भाभी से आशीष लिया-वत्स! विजयी भव। निश्चित ही सफलता तुम्हारे चरण-स्पर्श करके बड़भागी बनेगी।

और हाँ! कदाच् मेरी जरूरत पड़ जाए तो सिंहनाद कर देना। लक्ष्मण के कदम युद्धभूमि की ओर बढ़ गये।

इधर रावण सोच रहा था-सीता को हथियाने का यह उत्तम अवसर है। राम-लक्ष्मण तो खर, दूषण, त्रिशिरा और विशाल सैन्य दल का मुकाबला करने में व्यस्त होंगे, ऐसी स्थिति में सीता को चुरा पाना असहज नहीं होगा।

विवेक, मर्यादा, लज्जा, सम्मान, गौरव जैसे गुणों की निधि वासना, काम, अविवेक पूर्ण सोच के अंधेरे में अदृश्य हो गयी। अपना विमान लेकर वह तुरन्त दण्डकारण्य वनस्थ उन पर्णकुटीरों के पास पहुँचा। अपने अनुमान से विपरीत सीता के संरक्षण में खड़े राम को देखकर उसकी धारणाओं पर सौ सौ घड़े पानी पड़ गया।

बलशाली वह कोई कम नहीं था पर राम से अकेले टकराने का खतरा नहीं उठाना चाहता था। यों भी गुप्तचरों से राम की शक्ति के बारे कई बार सुना भी था, फिर लक्ष्मण का अद्‌भुत पराक्रम तो अभी अभी सगी आँखों से देखकर आया था। वह अकेला ही जब चौदह हजार सैनिकों से टकराने का सामर्थ्य रखता है, तब फिर राम का बल कितना प्रचंड होगा, यह प्रयोग का नहीं, केवल यथार्थ कल्पना का विषय है।

संशय और भय की दुविधा में काफी क्षण बीत गये पर रावण शीघ्र इस स्थिति से उबरना चाहता था। तत्काल उसने दिशावलोकिनी देवी का स्मरण किया।

महाराज ! मुझे कैसे याद किया? कहिये। मैं आपका क्या इष्ट कर सकती हूँ।

देवी ! मैं सीता को लेने के लिये आया हूँ पर राम की उपस्थिति में यह संभव नहीं है। तुम कोई ऐसी चाल चलो कि राम यहाँ से दूर चला जाए और सीता अकेली रह जाए।

सम्राट् ! आप ये क्या करने जा रहे हैं? यह खेल खतरे से खाली नहीं। आपको एक बार फिर से इस पर विचार करना चाहिये।

देखो देवी! खतरों से खेलना रावण की जन्मजात प्रकृति है। जिसमें खतरा न हो, उसमें रावण को रस कैसा? फिर मैं कोई अस्थिर मानसिकता वाला व्यक्ति तो हूँ नहीं कि मुझे अपने निर्णय के प्रति पुनर्विचार करना पड़े।

पर कभी-कभी किसी निर्णय पर रूककर भावी को भांप लेना भी जरूरी होता है। सीता के बहाने राम-लक्ष्मण के रूप में महाविनाश को क्यों आमंत्रित कर रहे हो राजन् ! समझाने के लहजे में देवी मुखर हुई।

रावण झल्ला उठा-देखो! मुझे न तो उपदेश सुनना पसंद है, न उपदेश देने के लिये तुम्हें याद किया है। तुमसे कुछ हो सकता है तो करो अन्यथा अपना रास्ता नापो।

देवी अब भला क्या करती। जानबूझकर यदि कोई कुएं में गिरे या सांप की बाँबी के पास खड़ा हो जाये तो सचेत करने के अतिरिक्त और क्या कर सकता है। ठीक है, समझाना मेरा नैतिक कर्त्तव्य था पर इसकी नियति यदि सर्वनाश है तब भला कोई क्या कर सकेगा।

उसने रावण के सामने उपाय प्रस्तुत करते हुए कहा था-महाराज! मैं सिंहनाद करूंगी, जिसे सुनकर राम रणस्थली की ओर प्रस्थान कर जाएंगे। कुटिया में अकेली सीता रहेगी, तब आप अपना मनप्रिय आसानी से पा सकोगे।

राम लक्ष्मण के पराक्रम, शौर्य और चतुराई से पूर्णतः आश्वस्त थे पर जैसे ही सिंहनाद की ध्वनि उनके कानों से टकरायी, उनका हृदय सैंकड़ों संकल्पों-विकल्पों से भर गया।

तो क्या लक्ष्मण पर खर, दूषण और त्रिशिरा भारी पड़ गये। उसके जान-प्राण को खतरा है या किसी ने राक्षसी विद्या का प्रयोग करके षड्यंत्र का व्यूह रचा है।

जैसे राम ने सिंहनाद की पुकार सुनी, वैसे ही सीता ने भी सुनी। प्राणनाथ ! लगता है भैया लक्ष्मण संकटग्रस्त हैं, उन्हें आपकी जरूरत है। चिन्तित स्वरों में सीता ने कहा।

पर वैदेही! इस समय लक्ष्मण के सुरक्षार्थ जाना एक दायित्व है, पर उससे भी बड़ा दायित्व-कर्त्तव्य है तुम्हारी सुरक्षा का। सीते! तुम्हें असुरक्षित छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकता।

स्वामिन्! आप भी कैसी बहकी-बहकी बात कर रहे हैं! आग्रहपूर्वक सीता ने आगे कहा-देखिये! इस समय मेरे संरक्षण के कर्त्तव्य से महान् कर्त्तव्य अनुज के पास जाने का है। अभी इतना समय नहीं है कि हम मिल बैठकर कोई लम्बी चर्चा कर सके।

फिर आपको मेरी चिन्ता है न। मैं कोई सामान्य अबला नहीं, मेरी भी रगों में क्षात्र-रक्त बह रहा है, मैं क्षत्रियाणी और वीरांगना हूँ। हाथ लगाने की तो बात दूर, यदि किसी ने मुझे बुरी नजर से भी देखा तो शील का तेज और ओज पहली दृष्टि में ही उसे राख के ढेर में बदल देगा। एक ही सांस में सीता बोल गयी।

सीता का आग्रह बढ़ता जा रहा था और राम का मन

लक्ष्मण की महावीरता

भावी अनिष्ट की आशंका से आतंकित था।

देखो सीता! तुम पीछे अकेली रहोगी। कहीं तुम्हें कुछ हो गया तो?

अरे! मेरी इतनी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। भला कौन जिन्दगी से ऊब गया है, जो राम-लक्ष्मण के रहते मुझ पर दृष्टिपात करने का दुस्साहस करेगा। अन्ततः राम को बेमन युद्धभूमि की ओर विदा होना पड़ा। उनका चित्त अभी भी निश्चिंत नहीं था। बढ रहे थे आगे, पर पाँव पड़ रहे थे पीछे।

युद्धभूमि में पहुँचकर उन्होंने देखा-लक्ष्मण बड़ी तत्परता, निडरता और वीरता से शत्रुओं के छक्के छुड़ा रहा है। उसके चेहरे पर कहीं कोई भय, तनाव या अस्थिरता नहीं है।

राम को जैसे ही लक्ष्मण ने देखा तो चौंक उठे-भैया! आप यहाँ, तो भाभी के पास कौन है?

राम ने कहा-तुमने सिंहनाद किया, इसलिये चला आया। लक्ष्मण ने तनिक घबराते हुए कहा-मैंने तो सिंहनाद किया ही नहीं। राम आश्चर्य में पड़े। आगे स्वर जोड़ते हुए लक्ष्मण बोले-भैया! भाभी को अकेला छोड़कर आपने बुद्धिमानी का काम नहीं किया। खैर....अब आपको शीघ्र जाना चाहिये। भाभी को कुछ हो गया तो?

इधर रावण अनुकूल अवसर की टोह में था। राम जब कुटीर से काफी दूर निकल गये तो उसने आहिस्ता-आहिस्ता अपने कदम सीता की प्राप्ति में बढ़ा दिये।

भाग्य की अनुकूलता ने कुटीर का मुख्य द्वार खुला ही छोड़ा था। सीता किन्हीं विचारों में खोयी हुई थी कि किसी की पदचाप ने उसकी एकाग्रता को तोड़ दिया। आकृति अभी अदृश्य थी। भारी भरकम प्रतिच्छाया को देख वह सिहर उठी। पूरे शरीर में कम्पकम्पी छूट गयी। कुछ पलों में आता हुआ रावण दिखाई दिया।

उसे लगा-जिस संकट की सम्भावना राम ने व्यक्त की थी, वह संकट जब अशुभ कर्मोदय से आ ही गया है तब

डर की नहीं, साहस और हिम्मत की जरूरत है।

पहली ही दृष्टि में फटकार लगाते हुए सीता ने कहा-अरे ए! कौन है तूं? इस तरह ऊँट की भाँति मुँह आगे किये कहाँ चला आ रहा है? रावण पर जैसे कोई प्रभाव न हुआ हो, वैसे अनसुना करके आगे बढ़ता रहा।

सीता रावण की उद्दण्डता से उबल पड़ी। फटकारते हुए उसने कहा-लम्पट! क्या तूं सुनता नहीं है ?

सीते! मैं तो सौन्दर्य का पूजारी हूँ इसलिये तेरे घर....तेरे दर चला आया हूँ।

रावण की बड़ी बड़ी आँखों में नृत्य करती कामुकता और लम्पटता देख सीता घबरा गयी।

तू कौन है, मैं नाम से तुझे भले ही नहीं जानती पर इतना जरूर कह सकती हूँ कि तूं सौन्दर्य का पूजारी नहीं, वासना की गंदी नाली का कीड़ा है, और कुछ भी नहीं।

मुझे लोग लंकापति रावण के नाम से जानते हैं। पर तेरे लिये मेरा परिचय लंकापति के रूप में नहीं, प्रियतम के रूप में होगा। सीता के पूरे तन-बदन में आग लग गयी। 'अपनी बकवास बंद कर । फिर से ऐसे गन्दे शब्द निकाले तो जबान खींच लूंगी, समझे।' और तूं सुर्पणखा का भाई ! लगता है तुम दोनों भाई-बहिन एक ही मिट्टी के विकारी घड़े हो, तभी तो शर्म, संस्कार और शिष्टता का लवलेश तुम दोनों में है ही नहीं।

रावण बोला-चुप कर तेरी रामायण । तूं मेरी होकर रहेगी। यह रावण का संकल्प है। वह आगे बढ़ा। सीता घबरायी हुई बोली-देख! तूं मेरे हाथ भी....। इतने में रावण ने उसे दोनों हाथों में उठाया और चलकर बाहर खड़े विमान में रख दिया।

अरे दुष्ट ! कहाँ ले जा रहा है मुझे? कहीं राम-लक्ष्मण आ गये तो बेमौत मारा जाएगा। मुझे छोड़ दे, इसी में तेरी भलाई है । विमान आकाश की दूरियाँ नापने लगा। कुटिल हँसी हँसता हुआ रावण बोला-अब न तो राम आएगा, न

लक्ष्मण। सदा सदा के लिये तूं मेरी हो गयी और मैं तेरा।

सीता को अत्यन्त क्रोध आया। अन्याय के प्रतिकार में उसका संघर्ष अविश्रान्त चल रहा था। केश-खींचाई! नख-प्रहार! दंत-प्रहार! अपमानजनक शब्दावली! पर रावण अप्रभावित था। अरे! कोई तो बचाओ। ये दुष्ट....लम्पट.... विकारी रावण सीता को उठाकर ले जा रहा है। जनक की पुत्री.... दशरथ की पुत्रवधू....राम की पत्नी....लक्ष्मण की भाभी....भामण्डल की भगिनी....के रूप में परिचय में देती हुई सीता जोर जोर से सहायता-संरक्षण के लिये पुकार कर रही थी। उसकी हृदयद्रावक पुकार और करूण-कन्द्रन से वन का जर्रा-जर्रा थर्रा उठा। उड़ते पक्षियों में दशहत फैल गयी। फूल मुरझा गये। नदी बहना भूल गयी। शबनम शोला बन गयी।

बऽचाऽऽओ....बऽचाऽऽओ....की करुण पुकार से नभमण्डल पलभर के लिये कांप उठा। सीता....का.... अपहरण....। सती....का....अपहरण....।

विमान जिस रास्ते से आगे बढ़ रहा था, उसी रास्ते में एक वृक्ष पर रामभक्त जटायु बैठा हुआ था। सीता की पुकार सुनने के साथ उसकी दृष्टि विमान पर गिरी। वह समझ गया-ये दुष्ट रावण सीता को अपहृत करके लंका ले जा रहा है। ये क्षण मेरी भक्ति की कसौटी के हैं। कर्त्तव्य की पुकार सुनकर पंख फड़फड़ाता हुआ वह विमान की राह-बीच में आकर खड़ा हो गया और उसकी गति में अवरोध उत्पन्न करने लगा। दो तीन बार रावण ने चेतावनी दी पर जटायु कर्त्तव्य निष्ठ जो ठहरा। न हार मानी, न हठ छोड़ी।

रावण के क्रोध का पार न रहा। कटिस्थ तलवार निकाली और एक ही वार में दोनों पंखों को काट डाला। जटायु हताहत हो जमीन पर गिर पड़ा।

आगे रत्नजटी नामक विद्याधर नभमार्ग से गुजर रहा था। उसके कानों से शब्दावली आ टकरायी-कोई तो मेरी सहायता करो। ....भामण्डल की बहिन को ये लुच्चा....। भामण्डल का नाम सुनकर रत्नजटी चौंका। उसे शीघ्रमेव

ख्याल में आ गया कि मेरे स्वामी की बहिन संकट में है। मुझे अपना फर्ज अवश्य निभाना चाहिये।

रावण की चौकन्नी नजरों से वह प्रच्छन्न नहीं था। वह विमान में प्रविष्ट होता, उससे पहले ही रावण ने तीव्र प्रहार करके अपना रास्ता निष्कंटक बना लिया। रत्नजटी मरणासन्न हो धरातल पर गिर पड़ा। रावण का विमान अविराम गति से लंका की ओर बढ़ रहा था।

इधर राम को काटो तो खून नहीं। जितने वेग से वे कुटीर की ओर बढ़ रहे थे, उससे कई गुणा ज्यादा नकारात्मक विचारों, अनिष्ट संभावनओं और दुर्गम बाधाओं ने वेगवती बनकर राम को चिन्ता चक्र में डाल दिया था।

तो क्या सिंहनाद की ध्वनि

प्रतिवासुदेव रावण द्वारा सती सीता का अपहरण

झूठी थी या मेरा कोरा भ्रम था। पर कैसा भ्रम? मैंने ही सिंहनाद सुना होता तो कोरा भ्रमजाल होता पर सीता ने भी तो सुना था। इसके पीछे कहीं कोई मायावी शक्ति तो काम नहीं कर रही! क्या सूर्पणखा ने यह भ्रमजाल बुना होगा? पर क्यों? अपमान का बदला खर, दूषण, त्रिशिरा एवं विशाल सैन्य दल भेजकर ले ही लिया है। हो सकता है, उसने दोहरी चाल चली हो। एक ओर राम-लक्ष्मण से युद्ध, दूसरी ओर सीता का अपहरण। इतने में वे पर्णकुटीर के द्वार तक पहुँच चुके थे।

मुख्य द्वार खुला देखकर अनिष्ट की कल्पना से उनका हृदय कांप उठा। अन्दर जाने तक की हिम्मत नहीं रही। अन्ततः साहस जुटाकर अन्दर पहुँचे। तीनों

पर्णकुटीरों को देखा। निवास स्थली का कोना-कोना छान मारा पर सीता कहीं भी नहीं थी।

सीते....सीते...का सम्बोधन करके दूर-दूर तक चारों ओर पेड़ों के झुरमुटों में....फूलों के उद्यानों में....पानी के

सीता के बचाव में रत्नजटी का रावण से विरोध

तालाब, कुएँ व बावड़ी के पास....लम्बी-लम्बी पगडंडियों में तलाश कर आए पर वैदेही कहीं भी न मिली। बस्ती में जाकर लोगों से भी पूछा पर सबका जवाब एक ही था-नहीं। हमने तो सीता को नहीं देखा। आखिर राम किससे पूछे? किसे कहे अपनी व्यथा और पीड़ा।

सबसे कह आए....पूछ आए....हर जगह खोज आए.... दिशाओं-विदिशाओं में बढ़कर देख लिया पर सीता का कहीं कोई अता-पता नहीं था।

फूलों से पूछा तो वे मुरझा गये।

आकाश से पूछा तो वह रो पड़ा।

पर्वत से पूछा तो वह उदास हो गया।

अरे ! मेरी छोटी-सी भूल ने कोमलांगी सीता को कितनी बड़ी सजा सुना दी।

वे शालिवृक्ष के नीचे निराश अपराध भाव से बैठ गये। मन में सीता की ही चिन्ता चक्कर काट रही थी। कहाँ होगी....कैसी होगी....। इन प्रश्नों ने जैसे उनकी सारी प्राण-शक्ति को सोंख

लिया था।

यकायक उनकी नजर पंखविहीन रक्तविहीन जटायु पर पड़ी। वे सारा माजरा समझ गये। अंतिम समय में अपना कर्त्तव्य निभाते हुए जटायु को पाप का प्रत्याख्यान करवा दिया। चतु:शरण स्वीकार कर जटायु मरा और चौथे देवलोक में उत्पन्न हुआ।

लक्ष्मण का पराक्रम और शौर्य अनुपम था। खर, दूषण, त्रिशिरा और विशाल सैन्य शक्ति पर वे अकेले ही भारी पड़ रहे थे। अब जब खर का प्रतिद्वन्द्वी विराध भी अपने दल-बल सहित उसके विरोध में आ खड़ा हुआ, तब तो जैसे खर की सेना के पाँव उखड़ने लगे। परिणाम सुस्पष्ट था। लक्ष्मण की विजय हुई और खर की घोर पराजय। युद्ध में खर, दूषण और त्रिशिरा, तीनों लक्ष्मण रूपी महाकाल के ग्रास बन गये।

लक्ष्मण जीत की रणभेरी बजाते हुए सोल्लास राम के समक्ष प्रस्तुत हुए पर क्षण मात्र में सारी खुशी और हँसी गम व पीड़ा में बदल गयी।

उनके क्रोध और प्रतिशोध का पार नहीं था पर

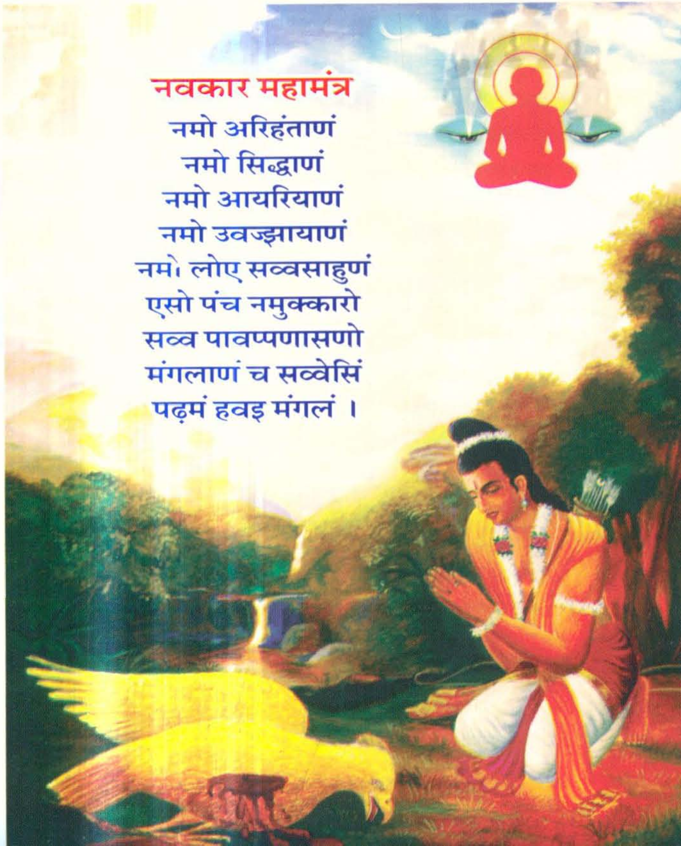

किसका करें प्रतिरोध! रावण तो सीता को उड़ाकर लंका पहुँच चुका था। वे अच्छी तरह जानते थे कि सीता के अभाव में राम टूट चुके हैं। गुमसुम हैं, बुढापें की थकान चेहरे पर उतर आयी है। पहले भैया को मानसिक तौर पर सम्भालते हुए उनको ढाढ़स, विश्वास और आशा से भरना जरूरी है।

भैया! भाभी सीता की नियति को उसका अपहरण मंजूर था तो उनका अपहरण करने वाले की नियति को उसका विनाश मंजूर है। दिन के उजाले की भाँति यह अत्यन्त स्पष्ट है कि भाभी को उठा ले जाने वाला आपके सामर्थ्य से भली भाँति परिचित है, तभी तो उसे प्रपंच का सहारा लेना पड़ा।

लक्ष्मण! सीता मेरे जीवन की आशा, सांसों की महक और मन का मनन थी। उसके बिछोह में जैसे मेरी शक्ति ही छिन गयी है। राम चिन्तित होते हुए बोले।

भैया ! सीता को छीनने वाले ने हमारा भाग्य और पुरुषार्थ थोड़े ही छीना है। हमारे पास है पाँवों की गति..बाजुओं का बल...उर्वर मस्तिष्क....आशावादी दृष्टिकोण...शस्त्रों की टंकार....और सबसे बड़ी न्याय, नीति और अहिंसा की महाशक्ति। है इस दुनिया में कोई ताकत, जो बंधु युगल की शक्ति का सामना कर सके।

तनिक संयत होते हुए लक्ष्मण रामाभिमुख होकर बोले–अयोध्या गौरव! भाभी है तो इस दुनिया में ही। हम अपने पुरुषार्थ से खोज निकालेंगे। उसके लिये पाताल खोद लेंगे...आकाश छान मारेंगे....समुद्र की अथाह गहराईयों को माप लेंगे...वनों, कन्दराओं, पर्वतों, महलों, उद्यानों तक पहुँचेंगे। अन्ततः जीत हमारी ही होगी, यह मेरा विश्वास बोलता है। लक्ष्मण की विधेयात्मक सोच ने राम को चिन्तन के लिये नया आकाश दिया। उदास मन में आशाएँ अंगड़ाईयाँ लेने लगी।

लक्ष्मण के शब्दों में अपने भाव जोड़ते हुए राम बोले–तूं ठीक कहता है लक्ष्मण! दुनिया में ऐसा कौनसा कार्य है, जो उद्यम के सातत्य और आशाओं की पूंजी से सम्पन्न नहीं हो सकता हो। इस घटना ने हमें जहाँ प्रतिपल सचेत रहने

की सीख दी है, वहीं पुरुषार्थ और पराक्रम को एक राह दी है। हो सकता है यह राह हमारे विकास के अमिट पद चिन्हित कर दे। जीवन के पन्नों पर एक सुन्दर आलेख लिख दे।

विराध की ओर उन्मुख होकर लक्ष्मण ने कहा-हमारे इस कार्य में वीर विराध का पूरा सहयोग रहेगा। इसने युद्ध में भी अविस्मरणीय भूमिका निभाई है।

राम ने विराध पर एक मोहिनी मुस्कान फैंकी तो विराध आत्मीयता की अनुभूति से भीग उठा। वह श्रीराम के चरणों में आलोटने लगा। राम ने अत्यन्त स्नेह से उसे गले लगा लिया और खर के द्वारा छीना हुआ उसका राज्य उसे दे दिया। विराध राम की निस्पृहता और अनासक्ति से यहाँ तक संवेदित हो उठा कि उनका परम भक्त बन गया।

पराजय का ये संदेश सूर्पणखा को मिल चुका था। वह अच्छी तरह जान चुकी थी कि राम-लक्ष्मण से टकराने का अर्थ अपना नामोनिशां मिटाना है। वह पुत्र सुंह के साथ सीधी सुवर्ण लंका पहुंची और रावण के सम्मुख खर की मृत्यु का दुःखड़ा रोते हुए राम-लक्ष्मण से बदला लेने का आग्रह किया पर सीता के सौन्दर्य और यौवन में पागल बने हुए रावण ने बंधु बेलड़ी से टकराने का कोई उल्लास नहीं दिखाया। इधर हजारों मील लम्बे क्षेत्रफल में राम-लक्ष्मण सीता को भला कहाँ खोजने जाए। आखिर परस्पर विचार विनिमय करके सीता का छोटा-मोटा सूराख मिलने पर ही खोजने का निर्णय किया।

दिन पर दिन बीते जा रहे थे। राम की रातों की नींद और लक्ष्मण के दिन का आराम खो गया था पर सीता का कोई सूराख नहीं मिला था। दोनों की चिन्ता क्रमशः गहरी होती जा रही थी।

और इधर एक दिन किष्किंधापुर में घटना यों बनी।

सुग्रीव, जो कि वहाँ के अधिपति थे, उनकी पत्नी तारा पर साहसगति विद्याधर मोहित था। एक दिन महाराज सुग्रीव को कारणवश बाहर जाना पड़ा और साहसगति की वासना ने पंख फड़फड़ाने शुरू कर दिये। रूपपरावर्तिनी

विद्या का प्रयोग कर वह सुग्रीव के रूप में अन्दर पहुँच गया। इधर सुग्रीव का निर्धारित काल से पूर्व वापस आना हो गया।

द्वाररक्षक के समक्ष मुसीबत पैदा हुई कि असली महाराज सुग्रीव कौन? दोनों स्वयं को असली सुग्रीव के रूप में ठहरा रहे थे। महाराज सुग्रीव ने राम की शरण ली-प्रभो! मेरी मुसीबत दूर करे। आप तो कृपावतार हैं। यों कहते हुए सारी घटना सामने रख दी।

द्वारपाल के सम्मुख समस्या: असली सुग्रीव कौन ?

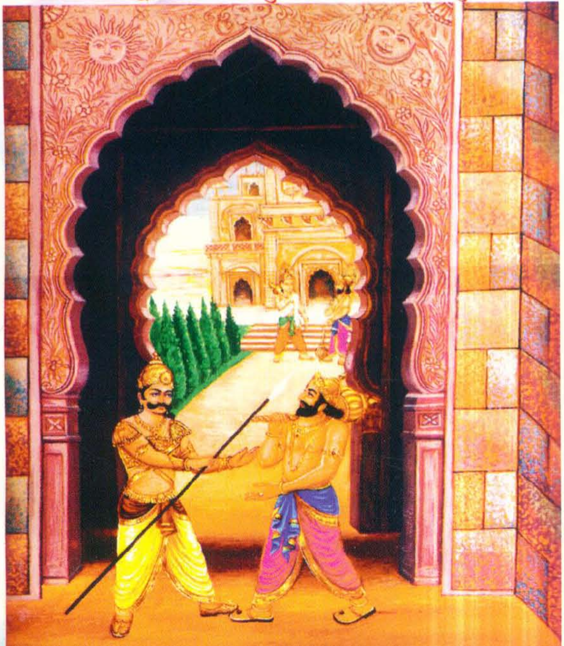

राम ने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर उच्च ध्वनि से एक हुंकार की। दूध का दूध और पानी का पानी हो गया। झूठा साहसगति अपने मूल रूप में आ गया। उसे अपने किये की सजा मृत्यु के रूप में मिली।

पत्नी तारा को पुनः प्राप्त कर सुग्रीव कृतज्ञता मिश्रित भक्तिभाव से भर गये। उन्होंने न केवल अपने विशाल सैन्य दल को अलग-अलग दिशाओं में भेजकर सीता की खोज शुरू करवाई अपितु स्वयं भी पूर्णप्रण से खोज के इस महायज्ञ में जुट गये।

राम और लक्ष्मण तो पहले से ही सीता की खोज में थे। भामण्डल भी अपना कर्त्तव्य मनोयोग से बजा रहा था। विराध की भूमिका भी कोई कम नहीं थी और अब सुग्रीव भी....। एक तरह से सीता की खोज का महाअभियान चल रहा था।

एक बार ऐसा हुआ कि सुग्रीव सीता को खोजते खोजते उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ विद्याधर रत्नजटी मरणासन्न अवस्था में पड़ा

था। सुग्रीव को निकटस्थ देखकर भी वह उनके अभिवादन में खड़ा न हो सका। यह देखकर सुग्रीव के आक्रोश का पार नहीं रहा। वे गर्जते हुए बोले–लगता है अपनी पद–प्रतिष्ठा में अभिमानी बन गया है तूं। तभी तो औचित्य को भूला बैठा है। रत्नजटी ने पीड़ित स्वरों में कहा–महाराज! मुझ नाचीज को भला मान कैसा! मैं भला आपका अपमान क्यों करूंगा?

तो फिर क्या पगला गया है, जो व्यवहारिकता भी नहीं निभा रहा।

राजन्! आपको क्या बताऊँ! जब से सीता का अपहरण हुआ है, तब से इसी अवस्था में पड़ा हूँ। कमर ही टूट गयी है मेरी। कहते हुए सीता के अपहरण का वृत्तान्त ज्यों का त्यों सुना दिया।

वृत्तांत सुनकर सुग्रीव को समझ में नहीं आया कि रत्नजटी की दुरवस्था पर सांत्वना व्यक्त करें या सीता के सूराख की प्राप्ति में आनंद मनाएँ। क्षणभर का भी विलम्ब किये बिना रत्नजटी को लेकर सुग्रीव श्रीराम के उपपात में पहुँचे।

आँखों में खुशी की चमक देखकर बंधु युगल ने पहली नजर में ही सीता के संवाद का अनुमान लगा लिया। सुग्रीव के मुख से रत्नजटी के प्राणान्तक कष्ट की गौरवमयी गाथा सुनकर श्रीराम अनुग्रह भाव से भर गये और उसे अपने गले से लगा लिया, साथ–साथ सुग्रीव के सत्पुरुषार्थ की प्रशंसा की।

आज रावण का आनंद जमीन और आकाश को चीरकर जैसे असीम हुआ जा रहा था। सीता के आ जाने से जैसे पुष्पों में नयी महक, उपवन में नयी बहार और राजभवन में नयी खुशी का अनुभव हो रहा था।

दो–तीन दिन उसने अपने मन को काफी संयत रखा, पर उसका धीरज चूक

सुग्रीव का श्रीराम–चरण में समर्पण

रहा था। सीता की ओर से मौन और प्रतीक्षा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिला था।

रावण अपनी घृणित, कुत्सित और निंदित भावनाएँ लेकर सीता के पास पहुँचा। आँखों में विकार....चेहरे पर उन्माद....होठों पर कुटिलता। अहं के नशे में डूबा रावण यह भी भूल गया कि सीता पतिव्रता व सावित्री है। मंदाकिनी-सा निर्मल है उसका जीवन। बेदाग है उसका पवित्र चरित्र। वह सामान्य नारी की भाँति घुटने टेक दे या वैभव के प्रलोभन में आ जाये, ऐसी कहीं कोई संभावना नहीं है।

**रत्नजटी का श्रीराम को प्रणाम**

अंग-अंग से सत्ता, सिद्धि और सम्पत्ति का मद टपकाता हुआ रावण बोला-सीते! देख! तेरे जीवन की प्राची में सौभाग्य का सूर्योदय हुआ है। कहाँ वह फटाहाल भील राम और कहाँ ये वैभवी रावण! कहाँ घोर जंगल! न रहने की व्यवस्था, न खाने-पीने का प्रबंध। यहाँ तुझे कोई दुविधा नहीं होगी। वैदेही! तेरे एक ईशारे पर आकाश से चाँद-तारे तोड़कर ला सकता हूँ....तूं कहकर तो देख।

वाह रे वाह! डींगें हांकना तो कोई तुझसे सीखे। जो स्वयं राम के आमने-सामने मुकाबला करने से कतराता हो, उसकी वीरता का अनुमान बहुत आसानी से लगाया जा सकता है ढोंगी!

रावण को जैसे किसी ने जोरदार तमाचा न जड़ दिया हो, इस कदर वह तिलमिला उठा।

सीतेऽऽऽ...तुझे मेरी शक्ति का अनुमान नहीं है। मेरे नाम से

नर-नरेन्द्र तो क्या, देव-देवेन्द्र भी काँपते हैं। पूरे विश्व में मेरे सामर्थ्य का डंका बज रहा है, तब इस प्रकार की तुच्छ भाषा का प्रयोग करते तुझे संकोच नहीं होता? मैं कोई सामान्य शासक नहीं, स्वर्णमयी लंका का अधिपति....महान् शक्तियों का स्वामी....अजेय सम्राट् !

'बस! बस! बीच में ही रावण की बात को काटती हुई सीता बोली-तूं अपने आपको चोर, मायावी और राक्षस कहे तो ही अच्छा है। क्यों फालतू अपनी शक्ति का दंभ भरता है। तेरा सामर्थ्य क्या मुझसे छिपा हुआ है? जिस देश का शासक चोर की भाँति पराई नारी को चुराकर लाता हो, वह घोर कायर, कमजोर और बुजदिल नहीं तो और क्या है? सीता के व्यंग्यात्मक और तीखे प्रहार से रावण जल भुन गया।

सीतेऽऽऽ! गरजकर रावण बोला। तूं मेरी बात मानती है कि नहीं? मैं जितनी नरमाई से पेश आ रहा हूँ, तूं उतनी ही अकड़ती जा रही है। देख ! तूं अपना भला खुद सोच सकती है और तूं यह भी अच्छी तरह जानती है कि यदि सीधी अंगुली से घी न निकले तो अंगुली को टेढा भी करना पड़ता है। मैं तुझे प्रेम से कह रहा हूं-मुझे स्वीकार कर ले, इसी में तेरा सुख है।

कड़कती हुई सीता बोली-एक भव में तो क्या, हजारों भवों तक मेरी कामना करें तो भी तूं लंपट मुझे नहीं पा सकता । मेरे रोम-रोम में केवल राम है। मेरा जीना और मरना, दोनों राम के साथ हैं। राम के साथ-साथ वन-वन भटकना मंजूर है, सर्दी-गर्मी-वर्षा, भूख-प्यास, सब कुछ सहर्ष स्वीकार है पर तेरे आलीशान भवन, रेशमी चादरों, मखमली शय्या, छप्पन भोग की कामना कभी नहीं करूंगी। कभी नहींऽऽऽ...।

देखता हूँ तेरी हठ कब तक चलती है। रावण की प्रचण्ड शक्ति का आखिर तुझे लोहा मानना ही होगा। रावण आखिर ऽऽ राऽऽवऽऽणऽऽ है। कहता हुआ रावण धीरे धीरे सीता की आँखों से ओझल हो गया।

अशोक वाटिका विस्तृत क्षेत्रफल में फैली हुई थी। उसे एक तरह से लंका की शोभा और सौन्दर्य को शतगुणित

करने वाली कही जाये तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।

रावण के आमोद-प्रमोद, मनोरंजन की स्थली अशोक वाटिका वृक्ष, फल, फूल से हर समय महकती, खिली-खिली रहती थी। आम्र, अश्वत्थ आदि अनेक वृक्षों की कतारें....आम्र कुंजरियों पर कुहुक करती कोयल.... नृत्य करते मयूर....।

रावण ने सीता को इसी वाटिका में रखा था। तीन दिन से निराहार सीता थकी-थकी लग रही थी पर मुख का तेज और ओज क्रमशः वर्धमान था।

विभीषण पुत्री त्रिजटा उसकी उचित-व्यवस्थित सार संभाल लेती। इन तीन दिनों में उसकी शील निष्ठा, पवित्रता और गंभीरता को देखकर वह उसकी प्रशंसिका बन गयी थी।

उसने शब्दों में अतिरिक्त मधुरता घोलते हुए कहा-पुत्री! मैं समझ रही हूँ तुम्हारी वेदना को पर भूखे रहने से तो कोई समाधान मिलने वाला नहीं है। अच्छा यही होगा कि तुम...। वह अपना वाक्य पूरा कर ही नहीं पायी थी कि सीता झल्ला उठी-क्यों मुझे बार-बार परेशान करती हो। मैंने कह दिया न कि जब तक प्राणनाथ श्रीराम की कुशलता के संवाद प्राप्त नहीं होंगे, तब तक मेरे लिये अन्न-जल का त्याग है।

पर पुत्री! इस प्रकार शरीर के साथ अत्याचार करने से क्या मिलेगा? यदि राम के समाचार सुनने है तों जीवन जरूरी है और जीवन के लिये भोजन जरूरी है।

बस! बस! तेरा उपदेश यही बंद कर। ऐसी बहकी बहकी बातें करके तुम मुझे गुमराह करना चाहती हो, जो कभी भी संभव नहीं होगा। तूं तप और संकल्प की महिमा नहीं जानती, इसीलिये ऐसी खोखली और निराधार बातें कर रही है। राम के समाचार नहीं मिलने तक अन्न-पानी मेरे लिये निषिद्ध है चाहे मौत ही क्यों न आ जाए। कहते कहते सीता की आँखों में तप की कान्ति छा गयी।

यद्यपि सीता–अपहरण का घटनाक्रम रावण ने मन्दोदरी से छिपा कर रखा था पर लंका की महारानी से भला यह घटना कैसे प्रच्छन्न रहती। ऐसा अपकृत्य सुनकर मंदोदरी का मन उद्वेग, आक्रोश और उत्तेजना से भर उठा ।

जब रावण ने कक्ष में प्रवेश किया तो अपनी सख्त नाराजगी और कड़ा रोष अभिव्यक्त करती हुई वह न एक भी शब्द बोली, न मुस्कुराकर स्वागत किया। इतना ही नहीं, वह अपने आसन से खड़ी तक नहीं हुई।

रावण मन्दोदरी की प्रतिक्रिया से जान चुका था कि यह घटना मन्दोदरी को सह्य नहीं है तथापि अनभिज्ञ बनता हुआ बनावटी स्मित बिखेरकर बोला–क्या बात है मन्दोदरी ! उदास लग रही हो। लगता है तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।

प्रत्युत्तर में मन्दोदरी कड़कती विद्युत् की तरह चमकी–लंकेश! मेरी तबियत तो ठीक है पर लगता है कि आपकी तबियत ठीक नहीं है। तभी तो सीता को अपहृत करके लाये हो। सम्राट् होकर चोर की तरह ऐसा अधम कार्य करते हुए आपकी अंगुलियों और आत्मा में तनिक भी कंपन नहीं हुआ?

रावण झल्लाता हुआ बोला–यह दण्ड है दण्ड! जिन्होंने मेरी बहिन का अपमान किया, भानजे का वध किया, उसे सजा तो मिलनी ही चाहिये।

मन्दोदरी बीच में ही बात काटती हुई बोली–सीता ने कोई अपराध नहीं किया है। अपराधी राम, लक्ष्मण है तो दण्डित भी उन्हें ही करना चाहिये। असहाय अबला पर यह अत्याचार कैसा?

बुद्धि का गुमान करता हुआ और मूंछों पर ताव देता हुआ रावण बोला–पंछी हाथ में न आए तो उसके पंख कांट लो बस! सीता के बिन राम नीर बिन मीन की भाँति तड़फ–तड़फ कर मर जाएगा। यही उसके अपराध की सजा है।

मन्दोदरी तनिक आवेश में बोली–आपके द्वारा भी आए दिन कितने ही निर्दोष शम्बूकों की हत्या होती है और यदि कोई मेरा अपहरण करके आपको सजा देना चाहे तो?

मन्दोदरी ऽऽऽ! रावण तमतमा उठा।

राजन्! सच सदैव कड़वा ही होता है। दो पल रूककर वार्ता का रूख बदलकर बोली–युगों युगों से पुरुष स्त्री को रखैल, वासना पूर्ति और कामभोग की वस्तु मानकर उसका शोषण करता आया है। उसकी इच्छाओं के साथ खिलौने की तरह खेलता आया है। पर याद रखना, सीता कोई सामान्य नारी नहीं, वह सती और पतिव्रता है। आप यदि अपनी, राज्य की और हम सबकी सलामती चाहते हैं तो सानंद सीता को लौटा दें। फैसला आपके हाथ में है।

रावण दांत किटकिटाता हुआ बोला–यह मेरा वैयक्तिक मामला है। इसमें तुम्हारे हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है। कक्ष में जैसे गहन सन्नाटा छा गया।

मंदोदरी बेबस थी। वह खुली आँखों से दूर दूर तक लंका के विनाशकारी भविष्य को देख रही थी। रावण को परखकर देख लिया, वह सीता को पाने के लिये कृतसंकल्प है पर सीता भी न जाने किस मिट्टी की बनी है जो उसका मन प्रलोभन या पट्टमहिषी के पद में एक इंच भी नहीं अटकता है। कैसे भी हो, मुझे लंका को बचाना है। यह स्वर्णमयी लंका सम्पूर्ण विश्व की आन, बान और शान है। तो मेरी इसमें क्या भूमिका हो सकती है। सोचते सोचते एक रूपरेखा उसके मानस–फलक पर अंकित हो गयी। सोते सोते उसने निर्णय भी ले लिया कि वह कल ही सीता से मिलेगी।

सीता को मन्दोदरी के आने की सूचना दी गयी। वह तो पद्मपत्र की भाँति सर्वथा निर्लिप्त थी। आँखों में आशाओं का दीप जलाये मन्दोदरी सखियों एवं दासियों से परिवृत्त हो सीता के पास पहुँची। सीता आगत–स्वागत में न तो स्थान से खड़ी हुई, न मिलने की कोई उत्सुकता दिखाई। मंदोदरी को सीता का यह रूखा व्यवहार अखरा भी सही ।

शब्दों को अतिरिक्त मधुमय बनाती हुई मन्दोदरी बोली–बहिना! क्षमा करना, इतने दिन आ न पायी। आज मौका मिलते ही चली आयी। पर यह कैसा पागलपन! देख, भोजन के अभाव में तेरी कोमल काया कैसी मुरझा गयी है! फिर

मुझे तेरी हठ पर भी तरस आता है। पुण्योदय से तूं रावण के मन भा गयी है, फिर भी तूं राम-राम का नाम जप रही है। बस! एक बार तूं 'हाँ' कहकर तो देख! तेरी किस्मत चमक उठेगी। तूं पटरानी बनेगी और दुनिया का सारा ऐश्वर्य तेरे कदमों में बिछेगा, और तो और, यह मन्दोदरी स्वयं तेरी सेवा में करबद्ध दिन रैन खड़ी रहेगी। सोच तो सही! कहाँ राम और कहाँ रावण। एक सिंधु है और दूसरा बिन्दु! राई-पर्वत का अन्तर। उस भिखारी का पल्लू छोड़कर एक बार रावण

मन्दोदरी और सीता का वार्तालाप

को पा लिया तो तेरी दुनिया....।

अब तो सीता की तितिक्षा जवाब दे गयी। वह तनिक आवेश में आकर बोली–अरी निर्लज्ज ! तूं अपना अनर्गल प्रलाप बंद करती है कि नहीं? सबसे पहली बात तो यह कि शील जैसा सर्वश्रेष्ठ धन तीनों लोकों में नहीं है। अन्न–धन–संपद की सारी श्रेष्ठताएँ मिलकर भी शीलगुण की लक्षांश में भी बराबरी नहीं कर सकती। फिर तूं जिस रावण की गुणगाथाएँ गा रही है, वह क्या मुझसे अनदेखा–अनजाना है। एक चोर, लुच्चे, लफंगे और व्याभिचारी से अधिक साफ सुथरी उसकी पहचान है ही क्या? क्षणार्ध श्वास की गति संतुलित करती हुई सीता बोली–लगता है तेरी बुद्धि फिर गयी है या फिर रावण का झूठन खा–खाकर तेरे विवेक पर जाला जम गया है अन्यथा तूं वासना की गंदी नाली के कीड़े की दलाली कभी नहीं करती। पुरुष तो खैर सदियों से नारी का शोषण करता आया है; उसे खिलौने से अधिक समझा ही कहाँ है! पर तूं नारी होकर परपुरुष को अपनाने, बहलाने और चाहने की जो बातें कर रही है, वह मेरी समझ से बाहर की बात है। शीलवती के शील को सुरक्षा देने की बजाय तूं जो डिगाने का मानस बनाकर आयी है, तेरा यह मंसूबा कभी पूरा नहीं होगा। धिक्कार है तुझे ! थूं...थूं है तुझ पर।

सौम्यवदना सीता के रौद्र स्वरूप को देखकर पलभर के लिये मंदोदरी भौंचक्की रह गयी। उसके वाक्प्रहारों में भवानी और चण्डिका के प्रचंड तेज को निहारकर वह पानी–पानी हो गयी।

सीता की अप्रकंप शील–आस्था देखकर मंदोदरी का न केवल मन बदला, अपितु श्रद्धा और प्रशंसा से छलक उठा। उसने कहा–सीते! तू नारी नहीं, नारायणी है। तुम जैसी पवित्र, शीलवती और पतिव्रता स्त्रियों से ही यह धरती रत्नगर्भा कहलाती है। मेरी तुझे सौ–सौ बधाईयाँ। मेरी कृपालु देव से यही कामना है कि तूं अपनी इष्ट–सिद्धि में सौ फीसदी सफल बने। सफलता तेरी मांग का सिंदूर और गले का मंगलसूत्र बनकर इतिहास में नया आलेख लिखे। कहती हुई मन्दोदरी की आँखें छलक उठी। राजप्रसाद की ओर बढ़ती हुई वह निर्णय कर चुकी थी कि जीत शील की ही

होगी। रावण की अनियन्त्रित वासना मौत को खुला आमंत्रण है। उसे समझाने का पुनः प्रयत्न करना चाहिए।

जैसा कि मन्दोदरी का पूर्वानुमान था, वैसा ही हुआ। रावण ने सीता के प्रश्न को व्यक्तिगत मामला बताते हुए मंदोदरी की बात को हवा में ही उड़ा दिया।

दिन में एक बार सीता से मिलना, यह रावण का नित्यक्रम था। वह जब भी जाता, राम के सौ-सौ टुकड़े करने की, शिरच्छेद की, ऐसी कितनी ही धमकियाँ देता पर सीता पूर्णतया अप्रभावित थी। मुख पर न भय का कुहासा होता, न हृदय में निराशा। आज उसने वार्ता को नया मोड़ देते हुए कहा-सीते! तेरा भाग्य तुझ पर बहुत मेहरबान है तभी तो मन्दोदरी, जो कि लंका की पटरानी है, वह भी तुम्हारी सेवा के लिये तैयार है। देख, सोच ले। कहीं मन्दोदरी अपना विचार बदल न दे।

सिंहनी की भाँति सीता मुखर हुई-तो तूं मेरे शील का सौदा करने आया है। तेरा दूसरा धंधा है भी क्या? कहने को तूं लंकापति है पर छवि लम्पट, बुजदिल और चोर से अधिक नहीं है। तूं चाहे जो कर ले। कदाच् सागर अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर ले पर मैं अपनी प्रतिज्ञा में स्थिर हूँ। वासना में अंधा बनकर तूं मुझे महारानी बनाने का प्रलोभन दे रहा है पर मुझे पद की कोई भूख नहीं है । मैं तो केवल श्रीराम की महारानी हूँ और मुझे श्रीराम ही काम्य है ।

रावण तैश में आये बिना न रहा। प्रतिदिन हो रहे विलम्ब ने उसे आक्रोश से भर दिया था।

लगता है तूं नरमाई से मानने वाली नहीं। स्त्रियाँ वैसे भी हठीली होती हैं पर मैं देखता हूँ कि तेरा आग्रह कब तक चलता है। आज ही राम की बोटी-बोटी करके कुत्तों को डलवा देता हूँ। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।

अरे! तूं क्या मुझे राम से अलग कर पाएगा? हमारा साथ एक भव का नहीं, भवोभव का है। साक्षात् मृत्यु भी अलग करने में सक्षम नहीं। कदाच् धारणा से विपरीत कोई परिणाम यदि आ भी जाएगा, तब भी तूं जीते जी मुझे न हाथ लगा सकेगा, न पा सकेगा।

बिना किसी सूचना के विभीषण का आना रावण के लिये अचरजप्रद था।

कैसे आना हुआ विभीषण?

बस, राजा और प्रजा के कुशल क्षेम के लिये। आज फिर वही बात कहने आया हूँ, जो पहले कही थी।

क्या सीता के संदर्भ में? प्रश्नायित नजरों से रावण बोला।

हाँ भैया! अभी भी वक्त है। सीता राम को लौटा दीजिये, अन्यथा इसके भयंकर से भयंकर विनाशकारी परिणाम आ सकते हैं।

नहीं! मैंने उसे अपने बाहुबल से पाया है, इसलिये वह मेरी है, केवल और केवल रावण का ही उस पर अधिकार है।

भैया! यह बात मुझसे तो क्या, पूरी लंका से छिपी नहीं है कि आपने किस प्रकार छल-प्रपंच करके सीता का अपहरण किया है। यह किसी भी देश-राज्य के लिये शुभ संकेत नहीं हो सकता कि उसका शासक अनुशासन, मर्यादा और विवेक को ताक पर रखकर परायी स्त्रियों का हरण करता फिरे।

विभीषणऽऽऽ! रावण का मुख रक्ताभ हो उठा।

और मुझे कहने दीजिये कि परायी नारी पर बुरी नजर रखने वाले का न भला हुआ है, न हो सकता है। फिर मैं कल ही सीता से मिलकर आया हूँ। वह अपने संकल्प में अटल और शील निष्ठा में निश्चल है। कदाच् मेरू पर्वत कंपायमान हो जाए, लवण समुद्र मर्यादा को लांघ जाए अथवा आग शीतल बन जाये पर सीता के मन की थाह ले पाना आपके-मेरे तो क्या, भगवान के भी बस की बात नहीं है। महासती की एक आह सम्पूर्ण रावण राज्य का सर्वनाश कर दे, उससे पहले आपको अपना निर्णय बदल देना चाहिए।

कल मेरा जो उत्तर था, आज भी वही है। यह मेरा व्यक्तिगत मामला है, इसमें तुम्हारी दखलअंदाजी अनपेक्षणीय है। रावण ने वार्तालाप पर पूर्ण विराम देते हुए कहा पर विभीषण की वार्ता जारी थी।

भैया! आपके इस कदम से सम्पूर्ण राज्य के हित-अहित, सुरक्षा-असुरक्षा का प्रश्न जुड़ा हुआ है अतः इसे व्यक्तिगत मामला कहना केवल एक बहाना है। आप....

बस विभीषण बस! मैं तुमसे इस सन्दर्भ में कोई चर्चा-विचारणा नहीं करना चाहता। कहता हुआ रावण कक्ष से बाहर निकल गया।

सीता के दिन काटे नहीं कट रहे थे । ओह ! मेरे अत्याग्रह के कारण रावण अपने प्रपंच में सफल हुआ। राम पर कैसा संकट आया। मेरे प्राणेश मेरी चिन्ता में कितने उद्विग्न होंगे? जैसे मैं उनका नाम ले लेकर दिन बीताती हूँ, वैसे ही वे भी मुझे याद करते होंगे। एक पक्ष पूर्ण हो चुका है पर उनके कोई समाचार नहीं है। क्या उन्होंने मुझे खोजा नहीं होगा। अवश्य खोजा होगा पर मेरा अता-पता कैसे मिलेगा। ओह! यह क्या.... क्यों.... कैसे हो गया! सीता की आँखें आँसूओं से भर आयी। त्रिजटा सीता की सेवा में प्रतिक्षण तत्पर थी पर वह भी क्या कर सकती थी ।

उसके पिता विभीषण सीता के पक्ष में थे, इससे सीता को बड़ा सुकून मिलता था। उनसे कभी पितृवत् स्नेह-दुलार मिलता तो कभी मित्रवत् धैर्य और आशाओं भरा चिन्तन! कुख्यात रावण के अंधेरे राज्य में सीता के लिये एक विभीषण ही तो विश्वास और हिम्मत की किरण थी। टूटे हुए की बैशाखी और डूबते की पतवार थी।

विभीषण का सीता के पक्ष में होना रावण से कोई छिपा हुआ नहीं था। कहीं विभीषण सीता को मुक्त न कर दे, इन्हीं विचारों में उसने सम्पूर्ण वाटिका में सहस्र सशस्त्र सैनिकों को नियुक्त कर दिया था।

मनमोहक अशोक वाटिका की महक, सौन्दर्य और गरिमा समाप्त हो चुकी थी। वह साक्षात् रणस्थली अथवा भयस्थली प्रतीत हो रही थी। सीता को राम नाम के बल पर जीते जीते कुल बीस दिन बीत गये थे। इन बीस दिनों में

अन्न का एक भी कण या पानी की एक भी बूंद गले से नीचे नहीं उतरी थी। बस! मिलन की मधुर आशाओं में दिन बीत रहे थे और इधर राम की व्यथा का आर-पार नहीं था। सीता कहाँ है? यह पता लग जाने के बाद भी सीता किस हाल में है? यह जानने के लिये मन उत्कंठा से भरा हुआ था।

सुग्रीव स्वयं इस सन्दर्भ में शीघ्र ही कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठाना चाह रहे थे। मंत्रीमण्डल की बैठक बुलायी गयी। प्रश्न यह ही था कि अशोक वाटिका में जाकर सीता की कुशलता के समाचार लाने की अर्हता से सम्पन्न कौन है। मन की सुई विविध प्रतिभा सम्पन्न मित्र राजाओं पर घूम रही थी कि यकायक सुग्रीव के मुँह से नाम निकला-रत्नपुर नरेश अंजनापुत्र हनुमान! इस नाम पर भला किसकी असहमति हो सकती थी!

**श्रीराम द्वारा मुद्रिका का हनुमान को अर्पण**

हनुमान रावण राज्य में माण्डलिक राजा के रूप में प्रसिद्ध था पर रावण के अन्याय और अनीति के कारण चलते तनाव-टकराव में उसने रावण से रिश्ता तोड़ दिया था। बहादुरी, तेजस्विता, स्फूर्ति और लब्धि सम्पन्न! तत्काल हनुमान को सन्देश भिजवाया गया। सन्देश मिला और हनुमान हाजिर। सुग्रीव ने संक्षिप्त में कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत की तो वह सहर्ष तैयार हो गया। राम-भक्ति का एक सुनहरा अवसर वह भला कैसे हाथ से जाने देता।

सुग्रीव ने राम से हनुमान का परिचय करवाया। हनुमान राम-चरणों में गिर पड़ा। राम ने अत्यन्त प्रेम से अपने पास बिठा लिया। वह भक्त तो तब से था, जब से राम की नीति, न्याय और अहिंसा के दिव्य गीत सुने थे पर आज उनकी मधुर मुस्कान और स्नेहिल व्यवहार ने उसे राम का परम

सेवक, उनके इंगित को आदेश मानकर चलने वाला, आज्ञापालक और उनके चरणों का उपासक बना दिया।

हनुमान इस कार्य में तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहता था। उसने दूसरे ही दिन जाने की तैयारी कर ली।

राम ने सीता के नाम पैगाम सुनाते हुए कहा–आंजनेय! तुम जा रहे हो तो सीता को कहना कि तुम्हारे बिना राम का जीवन नीरस, नीरव और शुष्क हो गया है। दिन इंतजार में कटते हैं। रातें लम्बी हो गयी हैं। कहीं भी मन नहीं लगता है। कहते कहते राम का गला अवरूद्ध हो गया। आँसू पोंछकर राम बोले–तुम सीता से यह भी कहना कि जुदाई के अब ज्यादा दिन नहीं हैं। वे पूरी तैयारी कर रहे हैं। बहुत जल्दी आएंगे और तुम्हें छुड़ाकर ले जाएंगे।

हनुमान बोले–वह तो मैं कह दूंगा पर भगवतीजी मुझे जानेगी कैसे? मैं विश्वास पात्र हूँ या प्रपंची, यह प्रश्न उनके दिमाग में उपस्थित हो गया तो? मुझे आप कोई ऐसा चिह्न प्रदान करें, जिससे उनके चित्त में कोई सन्देह शेष न रहे।

बहुत ठीक कहा तुमने! ये नामांकित मुद्रिका ले जाओ। राम ने अंगुली से मुद्रिका निकालकर हनुमान की हथेली में थमा दी।

हनुमान ने प्रणाम किया और पवन की भाँति तीव्र गति से लंका में प्रविष्ट हो गये। प्रदत्त निर्देशानुसार वे विभीषण से सबसे पहले मिले। रामदूत के रूप में हनुमान को आया देखकर वे अत्यन्त प्रसन्नता से भर गये।

सीता के व्यक्तित्व में चार चाँद लगाते हुए विभीषण बोले–सीता की ओर से घबराने की कोई जरूरत नहीं है। वह कोई अनुपमा देवी है! सारी उपमाएँ उस शील की देवी पतिव्रता सीता के सम्मुख फीकी नजर आती हैं। हालांकि रावण ने उसे मनाने, डराने, धमकाने के प्रयत्नों में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है। पर वह न लोभाभिभूत हुई, न भयभीत। रावण के हर प्रश्न का वह करारा मुँहतोड़ जवाब दे रही है।

फिर भैया रावण कृतसंकल्प है कि जब तक कोई नारी मुझे नहीं चाहेगी, तब तक उसका स्पर्श भी मेरे लिये त्याज्य है। यह अलंघ्य रेखा सीता को सुरक्षा दे रही है, पूर्ण सुरक्षा! और अब जब तुम आ गये हो तब तो महादेवी सीता

का मनोबल, विश्वास और संकल्प शतगुणित हो जाएगा। एक पल रूककर विभीषण बोले–पर इस तरह तुम्हारी अशोक वाटिका में प्रविष्टि न केवल कठिन होगी, अपितु संकटप्रद भी हो सकती है।

हनुमान सोल्लास बोले–आप मेरी ओर से असंदिग्ध रहे। मैं रूपपरावर्तिनी विद्या का प्रयोग करके बन्दर का रूप

हनुमान के समक्ष विभीषण द्वारा सीता की श्लाघा

बना लूंगा, फिर कोई आपत्ति नहीं होगी।

बहुत अच्छा ! जाओ, अब विलम्ब न करो। विभीषण के सद्भाव और सहयोग को नमन करता हुआ हनुमान अशोक वाटिका में पहुँच गया। कपि के रूप में उस पर न कोई सन्देह-शक हो सकता था, न रोक-टोक ।

एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर छलांग भरता हुआ हनुमान सीता की खोज कर रहा था। यद्यपि अशोक वाटिका लम्बी चौड़ी थी पर हनुमान को सीता के पास पहुँचने अधिक समय नहीं लगा। वह उस अशोक वृक्ष के उपर पहुँच गया, जिसके नीचे सीता ध्यानस्थ थी। भड़कीले वस्त्रों में सन्नद्ध सैकड़ों सुरक्षाकर्मियों के बीच सादगी, शिष्टता और सौम्यता की प्रतिकृति। सीता को पहचानने में हनुमान को ज्यादा वक्त नहीं लगा। फिर उसके मुख से उच्चारित 'राम-राम' की जप-ध्वनि से हनुमान हर तरह से निश्‍िंचत हो गया कि यही भगवती सीताजी हैं।

सीता को श्रीराम की कुशलता का संदेश

अगले ही क्षण उसने सीता की गोद में राम नामांकित मुद्रिका टपका दी। मुद्रिका चिरपरिचित थी। राम-नाम देख सीता का उदास मुख जैसे गुलाब की भाँति खिल उठा। हृदय की प्रसन्नता का तो कहना ही क्या? जैसे साक्षात् राम न मिल गये हो। वह भावविभोर हो उठी। मुद्रिका को बार-बार हृदय से लगाने लगी। इस दृश्य को देख हनुमान स्वयं खुशी से भर गये।

अचानक सीता की सोच ने करवट बदली-अरे! यह मुद्रिका यहाँ कैसे आयी? जबकि पतिदेव दण्डकारण्य में है। न पाताल फोड़कर आ सकती है, न आकाश से टपक सकती है। फिर किस में हिम्मत है, जो मुद्रिका चुराकर

ले आए। सीता के चेहरे पर उतरते-चढते भावों को हनुमान सूक्ष्मता से पढ रहे थे।

जब मेरा अपहरण हुआ, तब तक युद्ध अनिर्णय की स्थिति में था तो क्या खर और सूर्पणखा ने प्रतिशोध लिया होगा? तो क्या प्राणेश राम के प्राण संकट में है? तो क्या सूर्पणखा ने उन्हें बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया होगा? प्रश्नों के चक्रव्यूह से सीता का माथा चकराने लगा। क्षणमात्र में प्रसन्नता विषण्णता में बदल गयी।

भाव लिपि पढने में कुशल हनुमान समझ गये कि अब अप्रकट रहना उचित नहीं है। वे तुरन्त मूल रूप में सीता के सामने प्रकट हो गये। अचानक किसी पुरूष के यों प्रकट होने से सीता का चौंकना, डरना, सिमटना अत्यन्त स्वाभाविक था।

हनुमान करबद्ध हो बोले-भगवती सीताजी! हनुमान की भावभीनी प्रणतियाँ-वंदनाएँ स्वीकारें।

पर कौन हो तुम? कहाँ से और क्यों आये हो? क्या काम है मुझसे। सीता जिज्ञासावश कह उठी।

हनुमान के मुख पर निश्छल मुस्कान तैर रही थी। आँखों में तैरता पुत्रत्व का भाव, निर्मल मुखाकृति और बोलता समर्पण देखकर सीता का भयभाव पल मात्र में तिरोहित हो गया।

अपना परिचय देते हुए हनुमान बोले-मैं भगवान श्रीराम का दूत....उनका परम भक्त....चरणोपासक..., दासानुदास पवनपुत्र हनुमान हूँ।

राम का नाम सुना और सीता की रोमराजी खिल उठी। मन का मोर नाच उठा। तो क्या सन्देश लाये हो? कैसे हैं मेरे प्राणनाथ? वे कुशल तो है ना? सीता एक साथ हजार सवाल कर बैठी।

भगवती! श्रीराम सकुशल हैं! लक्ष्मणजी की सांस सांस उनकी सेवा में बिछी हुई है। रामप्रदत्त सन्देश सुनाते हुए हनुमान बोले-महासतीजी! अब आपको चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। विराट् स्तर पर युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो

चुकी हैं। शीघ्र ही भगवन् आयेंगे और मानव-दैत्य के चंगुल से आपको मुक्त करवायेंगे।

तो क्या स्वामी यहाँ आ पायेंगे! कितनी दूरी....कितना श्रम और कितने दिन! बीच में खड़ा असीम समन्दर.... रावण की महाशक्तियाँ!

अरे महादेवी! रावण और उसकी महासेना से निपटने के लिये केवल राम और लक्ष्मण ही पर्याप्त है पर भक्तिवश सम्राट् सुग्रीव, तवभ्राता भामण्डल, सम्मुखस्थ ये हनुमान आदि सैंकड़ों राजा भी राम की ओर से लड़ेंगे और महाकाल बनकर रावण राज्य की धज्जियाँ उड़ा देंगे।

सच! सीता आत्म विभोर हो बोली। कहीं तुम झूठा दिलासा तो नहीं दे रहे ?

नहीं महादेवी! बस! मेरे वहाँ पहुँचने की देरी है।

त्रिजटा तीक्ष्ण बुद्धि से सारा रहस्य समझ चुकी थी। सीता का संदेश रूप चूडामणि लेकर रामदूत प्रस्थान करें, उससे पहले ही वह दोनों के बीच पहुँच गयी-क्षमा करें। मैं आपके संवाद को भंग नहीं करना चाहती थी पर जरूरी काम आ गया। तत्पश्चात् हनुमानाभिमुख हो त्रिजटा बोली-देवपुरुष! पुत्री सीता का अभिग्रह यहाँ अभी समाप्त होता है। उसका संकल्प था कि जब तक श्रीराम का संवाद नहीं मिलेगा तब तक मेरे जलाहार का त्याग है। आज पूरे इक्कीस दिन हो चुके हैं। मैं चाहती हूँ कि रामदूत के हाथों सीता के सुदीर्घ तप का पारणा हो।

और ऐसा ही हुआ। हनुमान भक्तिपूर्वक पारणा करवा कर ज्योंहि जाने को समुद्यत हुए कि मन में एक विचार उभरा-एक अन्यायी, अपराधी, सौन्दर्यरसिक राजा के पास ऐसी खुबसूरत वाटिका का होना प्रकृति का सरासर अपमान है। फिर मैं कोई चोर-लुटेरा तो हूँ नहीं कि जैसे चुपके-चुपके आया, वैसी ही दबी आहट से प्रस्थान कर जाऊँ। उस चोर रावण को एक बार महाशक्ति का अहसास करा ही देना चाहिए। पल दो पल में वाटिका की विनाश-लीला का प्रारंभ हो गया।

हनुमान ने विद्या का प्रयोग करके चारों तरफ बन्दरों की फौज खड़ी कर दी।

बन्दर पौधों को उखाड़ने लगे.... शाखाओं-प्रशाखाओं को गिराने लगे...फल.... फूल....पत्तों से जैसे वातावरण आच्छादित हो गया। सुरक्षाकर्मियों ने उन्हें पकड़ने के हजार प्रयास किये पर सब आग में घी डालने जैसा साबित हुआ।

कपि ज्यादा से ज्यादा आतंक फैलाने लगे। जब बात हाथ की न रही तो उच्च अधिकारियों को सूचित किया गया। पर वे भी निराश ही हुए। हनुमान को पकड़ने के लिये रावण ने इन्द्रजीत को भेजा। हनुमान ने उसे भी बहुत छकाया-थकाया। बहुत प्रयत्नों के बाद हनुमान को नागपाश में बांधकर रावण के सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

हनुमान को देखकर रावण बौखला गया। अरे ए बन्दर! तूंने मेरी अशोक वाटिका उजाड़ दी। क्या तुझे रावण की शक्ति का अहसास नहीं

है? एक बार बन्दी बने कि फिर समझो, जिन्दगी के लाले पड़ जाते हैं।

बस! बस! कायरों के मुख से वीरों जैसी बातें शोभा नहीं देती है। रावण तिलमिला उठा।

लंकेश! सच हमेशा कटु होता है। जो विलास और आमोद-प्रमोद में ही जिन्दगी को स्वाहा कर देते हैं, वे निरे पशु, मूर्ख और बेबस प्राणी हैं और मरकर नरक में जाते हैं। फिर मैं श्रीराम की शरण में हूँ। विश्व की कोई भी शक्ति मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकती।

मूर्ख वानर! रावण की गिरफ्त में होकर उस अरण्यवासी भील की प्रशंसा करता है। मेरी शक्ति के सम्मुख वह है ही क्या? जैसे सूरज के सामने दीपक। रावण ने धमकाने के अंदाज में कहा।

लंकेश! तेरा ये एक तो क्या, हजारों नागपाश भी मुझे बांधने में सक्षम नहीं है।

रावण व्यंग्य कसता हुआ बोला-'थोथा

**हनुमान द्वारा अशोक वाटिका में उत्पात**

चणा बाजे घणा।'

अच्छा तो देख ले मेरी शक्ति का प्रचण्ड चमत्कार। 'जय सीताराम की' कहते हुए हनुमान ने अंगड़ाई ली। और नागपाश कच्चे धागे की भाँति तड़-तड़ करता हुआ टूट गया।

दूसरे ही पल हनुमान ने एक छलांग लगायी और रावण के माथे पर इतना जबरदस्त प्रहार किया कि रावण धड़ाम से नीचे गिर पड़ा।

पकड़ो....पकड़ो....उस वानर को। चारों तरफ से आवाजें आने लगी। पर कौन पकड़ता, कैसे पकड़ता। हनुमान तो विद्युत् तरंगों की तरह पल भर में आकाश में उड़ गया। इधर किष्किंधा में हनुमान की तीव्र प्रतीक्षा हो रही थी।

आगत हनुमान के मुख पर छाये लालित्य को देखकर उसके सफलकाम होकर लौटने में भला कौन सन्देह कर सकता था। हनुमान सोच रहा था कि बात कहाँ से शुरू करे। निःशब्द ही उसने चूडामणि राम के सामने धर दी। चूडामणि को क्या देखा, राम की धड़कनें तेज हो गयी। अंग अंग से आनंद का झरणा फूट पड़ा। आँखें हर्ष से भर आयी। कुछ पलों के लिये तो जैसे राम सीता से एकाकार-एकात्म हो गये।

हनुमान ने रावण की कामुकता, सीता की दृढ़ आस्था, विभीषण द्वारा अन्याय का प्रतिकार, त्रिजटा की स्नेहिल सुरक्षा के साथ आद्योपांत वृत्तांत कह सुनाया।

अब तो टकराने की तैयारियाँ पूरे जोर-शोर से शुरू हो गयी। यह नीति और न्याय का ही चमत्कार समझना चाहिए कि प्रतिपक्षी अनेक राजाओं का न केवल हार्दिक आश्वासन मिला अपितु सैन्य बल भी साथ हो गया। राम की न्यायशक्ति, लक्ष्मण की लगन, सीता का शील-बल और सभी का स्नेहिल सहयोग देखकर आखिर असीम समन्दर को भी समर्पित होकर रास्ता देना पड़ा। देखते-देखते राम-सेना ने लंका में प्रवेश पा लिया। उनका उत्साह चरम पर था।

गुप्तचर के द्वारा जैसे ही श्रीराम के लंका पदार्पण की सूचना मिली, रावण जैसे सोयी नींद से जागा।

क्या कहा? वे अरण्यवासी भील राम-लक्ष्मण लंका पर चढ आए हैं, वह भी पूरी तैयारी के साथ! हांऽऽऽ हांऽऽऽ हांऽऽऽ! जानबुझकर मौत को गले लगाने आए हैं। उसने मंत्री परीषद् बुलाकर शीघ्र सेना को सुसज्जित करने का आदेश दे दिया। इन्द्रजीत आदि सभी रावण के पक्ष में थे। कुंभकर्ण और विभीषण की मानसिकता युद्ध को टालने की थी। बाद में रावण के मनाने से कुंभकर्ण भले ही मान गया पर विभीषण युद्ध के विरोध में था।

वह अपने आसन से उठा और रावण-अभिमुख होता हुआ जैसे सम्पूर्ण सभा को सम्बोधित करने लगा-लंकेश! आप यदि चाहे तो अभी भी युद्ध का खतरा टल सकता है।

प्रश्नायित होता हुआ रावण बोला-वह कैसे?

सीता जिसकी है, अगर उसे लौटा दी जाए तो!

नहीं, विभीषण नहीं। दांतों को जैसे काटता हुआ रावण बोला। मैंने उसे बाहुबल से प्राप्त किया है, फिर यह भी तुमसे कोई छुपी बात नहीं है कि उन भीलों ने मेरी बहिन सूर्पणखा का अपमान किया है, मेरे भाणजे शम्बूक की हत्या की है, उनके अपराध की सजा तो मिलनी ही चाहिये।

लंकेश! सूर्पणखा जैसे आप की बहिन है, वैसे मेरी भी बहिन है। पर बंधुयुगल ने कोई जानबुझकर उसे जलील नहीं किया था। आप अच्छी तरह जानते हुए भी जैसे अनजान बन रहे हैं कि सूर्पणखा उनके सामने अशिष्ट-असभ्य होकर काम प्रार्थना करने गयी थी। उसने स्वयं ने अपने पाँव पर वार किया है अतः राम-लक्ष्मण का इसमें कोई दोष नहीं है। फिर शम्बूक के वध का मुझे भी कोई कम दुःख नहीं है पर लक्ष्मण ने उस अभिप्राय से तो वध किया नहीं था, अतः उसकी भूल क्षम्य है। आपको पुनः अपने फैसले पर विचार करना चाहिये।

विभीषण! अब सोचने जैसा रहा ही क्या है? यदि वे दोनों भील रावण के सामने आत्म-समर्पण कर दे तो युद्ध रूक सकता है, अन्यथा नहीं।

लंकेश! यह तो ठीक ऐसी ही बात हुई, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। फिर युद्धनीति के तौर पर भी आपको सोचना चाहिये। आप स्वयं कुशल राजनीतिज्ञ हैं, साम, दाम, दण्ड और भेद के प्रकाण्ड विद्वान् है। मैं कहूंगा तो छोटे मुँह बडी बात होगी।

रावण मौन था।

उस मौन को स्वीकृति मान विभीषण ने कहना शुरू किया–प्राज्ञ लंकेश! आप जानते हैं कि जब प्रतिपक्ष निर्बल हो, भूख आदि से संत्रस्त हो, उनमें फूट का वातावरण हो, तब युद्ध करना पक्ष में रहता है पर अभी ऐसी कोई स्थिति नहीं है। वे पूर्णतया सज–धजकर आए है, सबल, सक्षम और समर्थ है। उनका उत्साह और उमंग सीमा पार है और ऐसी स्थिति में युद्ध का आप अविचारित कदम उठाते हैं तो विजय हमारे पक्ष में होगी, ऐसा मानना नितान्त त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष है। सहयोग, सद्भाव के नाते हमारे पक्षधर अनेक राजा उन्हें नैतिक समर्थन ही नहीं देंगे अपितु आवश्यकता होने पर सैन्य सहयोग भी दे सकते हैं। अतः आपको सीता को लौटाकर गलती का प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये अन्यथा बुरे से बुरे विपरीत परिणाम आ सकते हैं।

विभीषण! बंद करो अपना भाषण। मैं कोई दूध पीता बच्चा नहीं कि जिसे समझाने की जरूरत पड़े। मैंने ठान लिया है कि सीता को अपनी बनाकर रहूँगा और उसे पाने के लिये जो करना पड़े, वह सब मुझे स्वीकार है।

लंकेश! तब तो मैं यही कहना चाहूंगा कि आप अपनी घिनोनी, घृणास्पद वासना की पूर्ति के लिये सम्पूर्ण लंका को भी बरबाद कर सकते हैं। इस नाते आप हमारे रक्षक नहीं, भक्षक हैं।

विभीषण ऽऽऽ! रावण चीखा।

पर विभीषण बिना रूके बोलते रहे।

यह युद्ध राम और रावण के बीच नहीं अपितु वासना और उपासना के बीच होगा। धर्म और अधर्म का युद्ध होगा।

न्याय और अन्याय में युद्ध : राम और रावण का संघर्ष

न्याय और अन्याय की जंग छिड़ेगी और जैसा परिणाम आज तक आया है, वैसा ही होगा! विजय उपासना, धर्म और न्याय की ही होगी।

विभीषण ऽऽऽ! तूं भाई नहीं, मेरा दुश्मन है, द्रौही और विरोधी है। तुझे मेरा सुख सुहाता नहीं। मेरी ही भूल हुई कि मैंने तुझे आश्रय दिया। तूं आस्तीन का सांप निकला। रावण की आँखों से जैसे अंगारे बरस रहे थे।

तूं अगर भाई नहीं होता तो कब का तेरा शिरच्छेद हो चुका होता। भातृद्रौही होने के नाते मैं तुझे देश, पद और राज्य से निर्वासित करता हूँ। अपनी कलमुँही सूरत फिर दिखाना मत, चला जा यहाँ से, मेरे राज्य से।

विभीषण के लिये अब कुछ भी बोलना शेष नहीं रहा था। वह नीति-न्याय के पक्ष में जा मिला। राम की शक्ति कई गुणा बढ़ गयी।

राम के विरूद्ध युद्ध का बिगुल फूंक दिया गया। दोनों की सेना युद्ध मैदान में आमने-सामने आ खड़ी हुई। यद्यपि रावण की सेना प्रतिपक्ष से दुगुनी थी, फिर भी राम-सेना का जोश शिखर पर था।

रावण की ओर से अनेक शूरवीर यौद्धा थे तो राम का पलड़ा भी कोई न्यून नहीं था। वैसे बलदेव राम और वासुदेव लक्ष्मण ही रावण के अहंकार को धूमिल करने के लिये पर्याप्त थे।

युद्ध की पूर्व निशा ही वह सीता से मिलने गया।

वैदेही! अब मेरे पास समय नहीं है। या तो तूं मेरी शय्याशायिनी बन जा या फिर राम-लक्ष्मण के प्राणान्त के समाचार सुनने के लिये तैयार रह। एक आज की ही रात बाकी है। कल रावण राम के लिये महाकाल बनकर रणभूमि में उतरेगा और उसका शिरच्छेद करके वांछित फल पाएगा।

बस...बस...! झूठा दंभ भरते शरम नहीं आती तुझे। मैं तो कहती हूँ, रूप में पागल बनकर जीवन मत गंवा। अभी भी राम की शरण ले ले, वरना बेमौत मारा जाएगा। मैंने तुझे कहा ही था कि मेरा अपहरण करके पूरी लंका को लाशों से श्मशान बनाने का तूंने बीड़ा उठा लिया है। फिर इस सती का स्पर्श करने की भी कोशिश की तो इसी पल भस्मीभूत

लक्ष्मण द्वारा मूर्च्छा की प्राप्ति

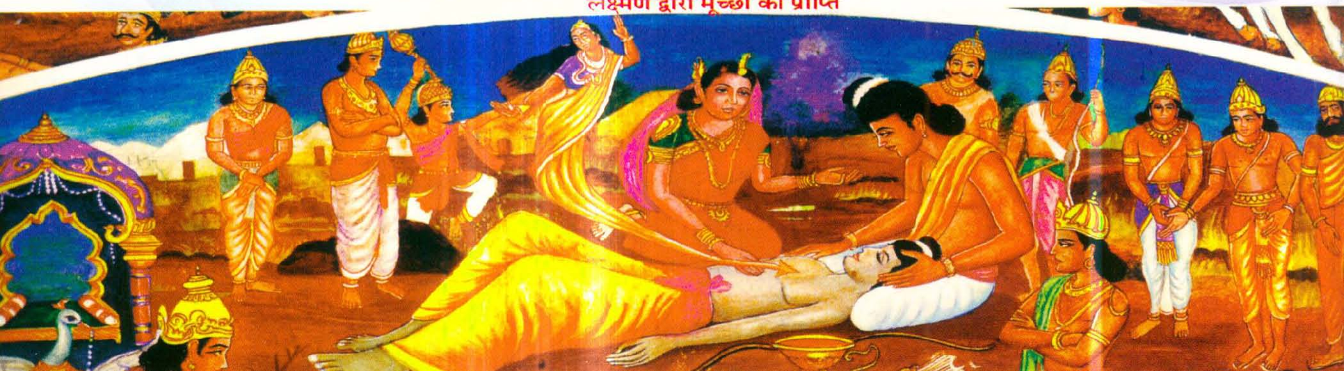

हो जाएगा। इसलिये मेरी मानो अब....।

सीतेऽऽऽ। मैं भी देखता हूँ। युद्ध में कौन बाजी मारता है! अहंकार में रावण दूसरे ही प्रभात राम-लक्ष्मण से जा भिड़ा पर कुछ ही पलों में कल्पनाओं के महल जमींदोज होते नजर आए। रावण के अनेक महारथी शहीद हुए। इन्द्रजीत और कुंभकर्ण जीते जी बंदी बना लिये गये।

रावण के लिये यह अत्यन्त आतंक और भय का विषय था। वह यहाँ तक संवेदित हुआ कि वह लक्ष्मण पर दिव्यास्त्र का प्रयोग कर बैठा। लक्ष्मण सावधान तो थे पर बच नहीं पाये। शस्त्र के प्रभाव से मूर्च्छित हो धड़ाम से रथ से नीचे गिर पड़े। राम की सेना में अफरा तफरी मच गयी। राम की व्यथा का कोई ओर-छोर नहीं रहा। आखिर सत्प्रयासों से पता चला कि द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या के स्नानजल से यह मूर्च्छा दूर हो सकती है। शीघ्र व्यवस्था की गयी। लक्ष्मण पुनः सचेत हो गये। राम की सेना में फिर उमंग की लहर बह चली।

रावण ने दो दिन तक साधना करके बहुरूपिणी विद्या को सिद्ध किया।

दूसरे ही दिन लक्ष्मण और रावण आमने सामने हो गये। रावण में बहुरूपिणी विद्या का प्रयोग किया पर लक्ष्मण उसका निरन्तर प्रतिकार कर रहे थे। इससे उद्विग्न होकर रावण ने सुदर्शन चक्र चला दिया पर चक्र ने लक्ष्मण का सिरच्छेद नहीं किया। उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके ही हाथ में आ गया। अहंकारी रावण अब भी विभीषणों के समझाने से नहीं समझा। लक्ष्मण ने चक्र को गति देकर रावण पर फैंका और तेजस्वी चक्र ने कृतपाप का प्रायश्चित्त करवाते हुए रावण की छाती चीर दी। विशाल वृक्ष की भाँति रावण धराशायी हो गया। अन्याय और अहंकार धूमिल हो गया। न्याय और शील की प्रतिष्ठा हो गयी। राम की छावनियों में विजय की शहनाईयाँ बज उठी। राम एक पल की भी देरी किये बिना लक्ष्मण आदि के साथ अशोक वाटिका की ओर चल पड़े।

सीता के नयन तब से राम के प्रतीक्षा-पथ में बिछ गये थे, जब से हनुमान स्वामी के समाचार देकर किष्किंधा की

ओर प्रस्थित हुए थे। उसका एक-एक पल एक-एक युग से बड़ा हो गया था। आखिर इंतजार की घड़ियों का अन्त हुआ। राम को आते देखकर सीता आनंद में नहा उठी। वह कुछ कदम विजय-अभिनंदन में आगे बढ़ती, इतने में राम निकट आ गये। दोनों की आँखों में स्नेह सिन्धु लहरा उठा।

निश्शब्द....अशब्द....। बहते आँसू ही जैसे सारी राम कहानी सुना रहे थे। राम के मुख पर तैरती गंभीरता, स्नेह और आनंद की परछाईयाँ और सीता के मेले-कुचेले शरीर व परिधान से छन-छन कर बाहर आ रही तेज और ओज की पवित्र किरणें।

लक्ष्मण भाभी के चरणों में गिरे और हर्षाश्रुओं से चरण-प्रक्षालित हो गये। प्रशंसा, अनुमोदना, सहयोग, हर्ष, शोक, संवेदना, विरह, आँसू, प्रेम, न जाने कितने कितने रंग-बिरंगे भावों को भीतर समेटता हुआ सूरज अस्ताचल की ओर गतिशील था।

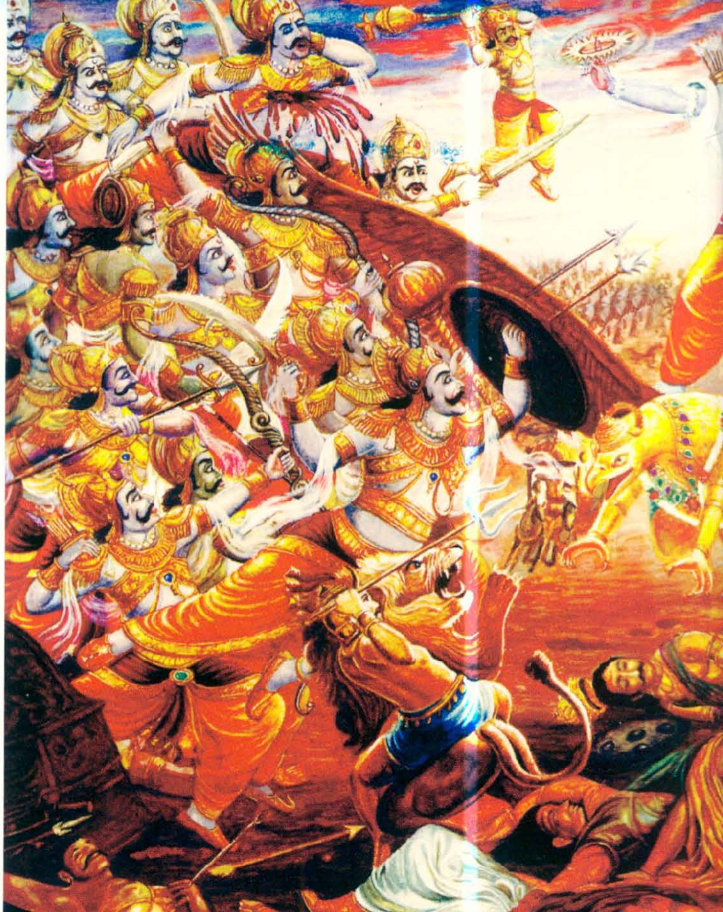

लक्ष्मण का रण मैदान में युद्ध-कौशल्य एवं रावण के द्वारा बहुरूपिणी विद्या का प्रयोग

सितारों ने फिर सीता की मांग भर दी। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने पुनः जीवन के नये पथ पर कदम धर दिये।

लंका, जो अनीति, अराजकता और आतंक का अड्डा बन गयी थी, राम ने अनुशासन, आत्मीयता और अहिंसा के बीजों का वपन कर उसे नयी दिशा, नयी गति और नया उजाला दिया। विभीषण लंकेश के रूप में राम के द्वारा अधिष्ठित हुए।

दिन बीतते जा रहे थे। एक दिन नारद ऋषि का सभा में आना हुआ। अयोध्या में माता कौशल्या आदि का वृत्तांत सुनकर हृदय मीठे संस्मरणों से भीग गया। राम समझ गये-वनवास की अवधिपूर्ण हुई। अब माँ के चरणों की वन्दना में चलना है। लंका व लंकेश ने राम, लखन व सीता को भावभीनी. ..अश्रुभीनी विदाई दी।

आज राम का विमान अयोध्या की धरती पर उतर रहा था। अयोध्या स्वर्ग की

भाँति सज गयी थी । गली गली में मंगल तोरण द्वार बांधे गये। समय से पहले ही पूरी नगरी अगवानी में निर्धारित स्थल पर एकत्र हो गयी थी। उनके नेत्र उत्सुकता से पुनः पुनः आकाश की ओर उठ रहे थे। इतने में देखा कि एक स्वर्णमय विमान इसी ओर आ रहा है। अब तो जैसे सबकी भावनाओं में ज्वार-सा आ गया। प्रकृति नाच उठी अपने लाडले को अपनी गोद में पाकर। नभमण्डल जयघोष से गूंज उठा। चंपा, चमेली, गुलाब, मोगरा आदि फूलों ने पथ में बिछाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। भरत, शत्रुघ्न ने साष्टांग प्रणाम कर मंगल आशीष प्राप्त किया।

हाथ जोड़कर रथारूढ़ राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या की बधाईयाँ... .अभिनंदनाएँ....वंदनाएँ....शुभकामनाएँ झेलते हुए राजप्रसाद की ओर बढ़े।

अयोध्या का जन-जन ही नहीं, कण-कण भी झूम रहा था। महिलाएँ मंगल गीत गा रही थी। बालिकाएँ अक्षतों से बधा रही थी। बालक पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। भेरी, मृदंग, शंख, वीणा, झालर, शहनाई का मधुर संगीत कानों में रस घोल रहा था।

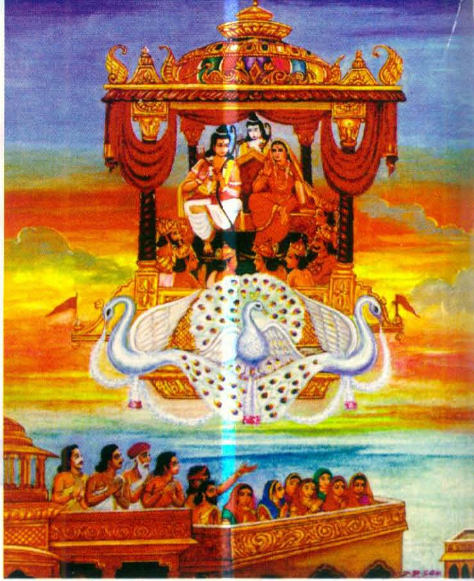

अयोध्या में अयोध्यानंदन का आगमन

लगभग दो घटिका पर्यन्त बहुमान-सम्मान की धारा में भीगते-भीगते राम, लक्ष्मण व सीता राजप्रसाद के द्वार पर पहुँचे।

आज कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा और सुप्रभा की आँखों की चमक-दमक कुछ निराली थी। ओह! मेरी आँखों का तारा, मेरा दुलारा, चौदह वर्षों की महायात्रा को सफलतापूर्वक पूर्ण करके लौट रहा है।

थिरक रहे हैं पाँव ! नाच रही हैं आँखें ! पुलकित हृदय ! उल्लसित विचार !

आखिर इन्तजार का समापन हुआ! माँ के चरणों में राम ने साष्टांग प्रणाम किया। सीता और लक्ष्मण ने भी आशीर्वाद प्राप्त किया। हाथ जुड़ गये। नयन भर आए। मन तुष्ट हुआ। गद्‌गद् हृदय से राम इतना ही बोल पाए-कैसी हो माँ?

आशीष, मंगलकामना और बधाई के पुष्पों से मन की धरा मुस्कुरा उठी। आरती उतारी नयन में झिलमिलाते प्रेम के दीपों से! बलैया लेकर दीर्घायु की कामना ने अंगड़ाईयाँ ली!

नया युग फिर शुरू हुआ । राम का शासन.....अनुशासन और मर्यादा का उत्सव !

पूरे राज्य में सर्वत्र आनंद की मीठी किलकारियाँ गूंज रही थी। सीता जीवन के नये अध्याय का प्रारम्भ कर चुकी थी। पर उसे क्या पता था कि भाग्य फिर एक करवट लेने वाला है।

उसने एक रात्रि में अष्टापद युगल का स्वप्न देखा । स्वप्न पाठक आए। यह फल जानकर सर्वत्र अत्यन्त हर्ष और बधाई का मौसम छा गया कि सीता की उज्ज्वल कुक्षि में रघुकुल का भविष्य सांसें ले रहा है। राम तो पहले से ही सीता के प्रति संवेदनशील थे, अब तो कदम-कदम पर उसका ध्यान रखने लगे। अन्य रानियाँ पहले से ही ईर्ष्या से जलभुन रही थी, अब तो उनकी ईर्ष्या भयंकर दावानल का दाह बन गयी।

चरणों में शीश : माँ का आशीष

अरे! वह बड़े घर की बेटी है तो क्या हुआ, हम भी अपने माँ-बाप की प्यारी-दुलारी पुत्रियाँ हैं फिर सारा समय,

स्नेह संवेदना उसके प्रति ही क्यों? मर्यादा पुरुषोत्तम बातें तो करते हैं समानता की, और आचरण उसके विपरीत ! यद्यपि सिंह के मुँह में हाथ डालने का सामर्थ्य किसी में न था तो अन्याय भी सह्य न था।

क्या किया जाए कि राम सीता से रूष्ट हो जाए।

एक रानी बोली–किसी भी तरह सीता को कुलटा, दुश्चरित्रा साबित कर दिया जाए तो काम बन सकता है। चाह को राह मिलते देर न लगी। दूसरे ही दिन सारी रानियाँ सीता के कक्ष में पहुँच गयी। बातों ही बातों में एक रानी बोली–भगिनी ! हमें लंका की शब्द यात्रा तो करवाओ।

सीता बोली–क्या बताऊं? मन मसोसकर मैं वहाँ रही। वह स्थान मेरे लिये नरक से अधिक कष्टप्रद था। प्रतिक्षण उस क्षण का इन्तजार था जिस क्षण स्वामी आए और मुझे उस दुष्ट के चंगुल से मुक्त करवाये। प्रतिपल उदास...होंठो पर राम का नाम...हृदय...।

वह तो ठीक है, कहती हुई एक रानी ने बात काटी! छह महीनों तक रावण के निकट रही। रावण का तुम्हारे प्रति प्रेम कितना अनूठा था? ये शब्द सीता के लिये खौलते तेल से भी अधिक भयंकर थे।

वह अत्यन्त क्रुद्ध हो बोली–कैसी निकटता! मैं एक पल भी उसके उपपात में नहीं रही।

पर हमने सुना है, वह अप्रतिम सुन्दर था। एक रानी ने कहा।

मुझे क्या पता? मैंने तो उसकी ओर कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा।

छह महिनों तक वह तुम्हें मनाने के लिए आता रहा और तुमने एक बार भी देखा नहीं, ये भी कोई बात हुई! ठीक है, तुम कहती हो तो मान लेते हैं। पर तुम कैसे जान पाती थी कि रावण आया या गया! सीता बोली–

उसके पाँवों को देखकर ठीक है, उन पाँवों की एक कृति बनाकर तो दे दो हमें। उससे ही हम उसके स्वरूप का

यथार्थ आकलन कर लेंगे।

सीता ठहरी सीधी, ऋजुमना! वह भला स्रोतों की कुटिलता को क्या जाने? उसने कहा–देखे तो थे पर पूर्णतया स्मृति में नहीं है।

– ठीक है, जैसे याद है, वैसे ही बना दीजिये।

सीता उनके बढ़ते आग्रह को देखकर मानसिक दुरभिसंधि को पकड़ नहीं पायी, इसे उसकी ऋजुता ही कहना होगा। वह उदार चित्त से बोल पड़ी–ठीक है, तुम इतना ही चाहती हो तो उकेर देती हूँ।

चित्रकला की सारी सामग्री तैयार थी।

कुछ ही पलों में रावण के पैरों को उकेर लिया गया।

सीता द्वारा रावण के पाँवों का चित्रण

लक्ष्य की सम्पूर्ति के बाद संगोष्ठी का कोई अर्थ न था। सौत-रानियों ने बड़ी धूर्तता के साथ उस चित्र को पार कर लिया और उसका तैल चित्र बनवाकर राम के कक्ष में शय्या के निकटस्थ पीठिका पर स्थापित कर दिया।

अपराह्न में भोजन करके राम का कक्ष में आना हुआ। अचानक उनकी निगाह उस चित्र पर पड़ी। क्रुद्ध होकर बोले–अरे! यह चित्र तो रावण के पाँवों का

है! यहाँ कौन लाया ?

सीता वहाँ थी नहीं। अन्य रानियों ने अवसर देखकर कहा–हमने नहीं रखा। हमें क्या लेना–देना इस चित्र से। फिर हमें क्या जीने का मोह नहीं, जो ऐसा अकार्य करेगी।

तो फिर लाया कौन? राम ने झल्लाते हुए पूछा कहा।

एक रानी दबी जुबान से बोली–यह चित्र तो पटरानी सीताजी ने ही रखा है। इनकी पूजा करना उनका नित–नियम है। सांझ–सवेरे वे इसके दर्शन अवश्य करती है। और तो और, इन्हें पूजे बिना तो अन्न–जल भी स्वीकार.....!

तुम अपनी बकवास बन्द करती हो कि नहींऽऽऽ! कक्ष का थर्रा–थर्रा कांप गया। फिर कभी ऐसी बात मुँह से निकाली तो खबरदार ! मुझसे बुरा दूसरा न होगा। रानियाँ सकपकाकर रह गयी। ये तो लेने के देने पड़ गये। चली थी सीता पर कलंक का कीचड़ उछालने के लिये पर खुद ही कीचड़ में लिप्त हो गयी। इतना होने पर भी उनका मनोबल टूटा नहीं। उन्होंने दूसरा हथकंडा अपनाया। रावण के पैरों के एक तैलचित्र की सैंकड़ों–हजारों अनुप्रतियाँ तैयार करवा दी और दासियों के द्वारा हर घर तक पहुँचा दी।

कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण अयोध्या का सीता के प्रति दृष्टिकोण बदल गया।

चार लोग मिले नहीं, और चर्चा शुरू हुई नहीं।

देखो तो सही, रावण के पैरों की नित पूजा करने वाली सीता अयोध्या की पटरानी बन बैठी है। थूं....थूं....है इसके चरित्र पर। न राम–राज्य की सोची, न रघुकुल की समुज्ज्वल परम्परा को देखा। छह–छह महिने तक रावण के महल में रंगरेलियाँ मनाती रही और कहलाती है सती....महासती, शील की देवी और पतिव्रता।

दूसरा बोलता–कुलटा और दुराचारिणी है ये सीता, इतना होने पर भी हमारे राजा की नादानी तो देखो। दिन भर

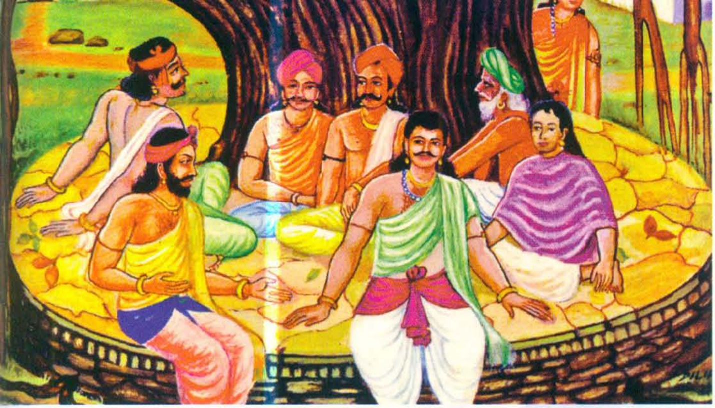
राम द्वारा गुप्तवेश में नगर-भ्रमण

सीते ! सीते ! करते फिरते हैं। जरुर ये जोरू के गुलाम हैं।

इतनी बातें चौक, बाजार, गली-गली में होने पर भी किसमें साहस था कि वह राम के सामने जाकर कुछ कह सके। गुप्तचरों के माध्यम से राम को अयोध्या में फैले निंदा के रोग की जानकारी हुई।

एक दो पल में चिन्तन के धरातल पर उपस्थित हो गये । जिस सीता के शील-शैल से टकराकर रावण का अंहकार चूर हो गया, उसकी निंदा.....जनाक्रोश....भर्त्सना।

क्या मैं नहीं जानता कि जानकी, जो मेरी जान है, वह शील, सत्त्व और मर्यादा की महादेवी है। उसे पाकर मैं ही नहीं, पूरी अयोध्या धन्य बनी है । उस पर दुराचारिणी होने का कलंक मढने से पहले सोचने वाला क्या कोई नहीं? विचारों में जैसे एक तूफान आया। वह तूफान सीता के शील में सन्देह को लेकर नहीं, अपितु अयोध्या की नासमझ, नादान और बहकने वाली जनता के सन्दर्भ में था।

अर्धरात्रि का समय था। राम ने वस्त्र बदले और चल पड़े नगरवासियों के बीच। गली-गली में सीता की खुलकर निंदा हो रही थी। कुलटा, चरित्रहीन, दुराचारिणी, रावण की प्रेयसी जैसे विशेषण निस्संकोच प्रयुक्त हो रहे थे। चारों ओर जनापवाद का जहर फैला हुआ था।

एक जगह निंदा का खेल-तमाशा देखकर तो राम स्तब्ध रह गये।

सीता को रघुकुल की परवाह ही कब थी? यदि होती तो कुकर्म करने पहले चार बार सोचती नहीं? और राम की नामर्दानगी और सत्त्वहीनता तो देखो। पूरा पागल हो गया है। कुलटा को किरीट बना बैठा है।

जैसे आकाश न टूट पड़ा हो अथवा पाताल में चले गये हो। राम का सिर चकराने लगा। वे धम्म से वहीं नीचे बैठ गये।

अरे! इतना जहर फैलने के बाद पता चला। पहले ही बताते तो इतनी बात बढती नहीं। ओह! इस अयोध्या में शील का मूल्यांकन करने वाला एक भी व्यक्ति नहीं है! अयोध्या की विवेक की आँखें भला किसने छीन ली! क्या चरित्र-अचरित्र को आचार-विचार और व्यवहार के मापदण्डों पर आंकने की क्षमता किसी में नहीं रही! सोच सोच में वे धोबी की बस्ती में पहुँच गये। वहाँ का संवाद सुना तो जैसे पाँवों तले जमीन ही खिसक गयी।

अरे ! दरवाजा तो खोल। कब तक योंहि बाहर खड़ी रहूँगी।

तेरा इस तरह इधर-उधर भटकना मुझे पसंद नहीं। तूं कुछ भी कर ले, यह दरवाजा नहीं खुलेगा। भीतर से आवाज आयी।

अरे ! तुझे क्या पता, ठेकेदारों और जमींदारों के घर कितने दूर हैं। तूं जाकर देखे तो पता चले। और दो चार घण्टे जा आयी तो कौनसा गलत काम कर लिया। फिर इस घर पर मेरा भी उतना ही अधिकार है, जितना कि तुम्हारा।

पर तूं अन्दर आकर तो देख, तेरी टांगें तोड़ के रख दूंगा। मुझे ये तेरा दुराचार तनिक भी पसंद नहीं।

ओह! बहुत देखे हैं तेरे जैसे सिद्धान्तवादी लोग। सीता छह महिनों तक रावण के पास रही, फिर भी राम ने उसे अपनाया कि नहीं?

पापिनी! उस कुलटा का तो नाम ही मत ले। और राम के साथ मेरी तुलना की तो जीभ खींच लूंगा। वह तो कायर

है कायर। अन्यथा दुराचारिणी को यों आँखों पर नहीं बिठाता। अब तूं चुपचाप यहाँ से चली जा वरना तेरा सिर फोड़ दूंगा।

आगे सुनने की क्षमता राम में कहाँ थी? माथा चक्कर खाने लगा। जैसे तैसे खुद को संभाला और लड़खड़ाते कदमों से भीतर के तूफान का सामना करते हुए महल में पहुँचे।

अर्धरात्रि हो चुकी थी पर नींद कहाँ थी उन निराश आँखों में।

कभी सीता की तेजस्वी मुखमुद्रा नयनों में तैर जाती। उसके शब्द सुनायी देते और 'स्वामिन् ! स्वामिन्!' और पल दो पल में ही पर्दाफाश होता तो धोबी के शब्द कानों से टकराने लगते।

'चुडैल! मेरी तुलना उस सत्त्वहीन राम से करती है। तेरे टुकड़े-टुकड़े करके खाई में फिकवा दूंगा....।

ओह! एक महासती के शील पर इतना जबरदस्त संदेह और ऊहापोह ! खतरनाक जनापवाद!

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सीता गंगा की भाँति पवित्र और चन्द्र की तरह निर्मल है पर इन ओछे, तुच्छ और भेड़चाल में चलने वाले लोगों को कैसे समझाऊँ कि तुम जो..., जैसा सोच रहे हो, वह सर्वथा निराधार है। सीता परम शुद्ध, बेदाग और अकलंक है। अरे! कोई एक व्यक्ति होता तो उसे शूली पर चढ़ा देता पर सकल प्रजा का क्या करूं।

क्या लोगों का विरोध करूं? नहीं....नहीं.... वे बगावत पर उतर आएंगे।

तो क्या निर्दोष सीता के सन्दर्भ में कदम उठाऊँ! फिर छोटे-मोटे कदम से भी काम नहीं होने वाला। उसका सर्वथा परित्याग किये बिना यह तीव्र जनाक्रोश शान्त हो नहीं सकता। मुझे उसका विसम्बन्धन करके भाग्य के भरोसे वन में एकाकी छोड़ना होगा। पर वह तो सगर्भा है। ऐसी स्थिति में वह कहाँ जाएगी? प्रश्न उभरे भी सही, पर पानी में खींची लकीर की तरह अगले ही क्षण तिरोहित हो गये ।

अब कोई निर्णय-अनिर्णय की स्थिति नहीं रही। सारे ऊहापोह समाप्त हो गये।

सीता भला क्या जाने कि आज का प्रभात उसकी जिन्दगी में घोर अन्धकार लेकर आया है।

आपातकालीन कार्यवाही का प्रारंभ हुआ।

'सीता का परित्याग' सुनकर लक्ष्मण, भरत, हनुमान, विभीषण किसी को भी राम पर विश्वास न हुआ।

सीता के परित्याग के विपक्ष में लक्ष्मण का निवेदन

लक्ष्मण ने राम को समझाते हुए कहा-भैया! आपकी यह सोच सर्वथा अनुचित है। भाभी के शील में छेद और सन्देह ! कदाच् चन्द्रमा आग के गोले बरसा सकता है, पानी शोलों की भाँति दहक सकता है पर महासती सीता भाभी के संस्कारों में रत्तीभर भी अन्तर नहीं आ सकता। मेहरबानी करके आप इस विचार को दिमाग से निकाल दें।

लंकेश विभीषण ने कहा-महिमानिधान! आपको कुछ भी कहना सूरज को दीपक दिखाने के समान नादानी है तथापि मैंने सगी आँखों से महादेवी की शील के प्रति जो निष्ठा और दृढ़ता देखी है, वह अपने आप में अप्रतिम और चमत्कृत करने वाली है।

तो क्या जनाक्रोश ओर जनापवाद को अनदेखा करूँ? मैं जो अनर्गल प्रलाप सुनकर आया हूँ, उसके प्रति कदम उठाये बिना यह उफनता क्रोध और लोकनिन्दा का तूफान प्रशान्त नहीं हो सकता। राम तनिक गरम होकर बोले।

वाह भैया वाह! लक्ष्मण उत्तेजित हुए बगैर न रहे। लोगों ने कहा और आपने सच मान लिया। मुझे आप साथ ले

जाते तो पल भर में सबकी बोली बन्द कर देता।

लक्ष्मण ! मैं अपने निर्णय में अटल हूँ। इसमें सूत भर भी फेर सम्भव नहीं है।

हनुमान अपने आसन से खड़े हुए और करबद्ध हो कहने लगे-अशोक वाटिका में आपकी नामांकित मुद्रिका को देखकर सीता मैय्या के चेहरे पर जो उल्लास छाया था, वह उनकी अविचल और बेदाग शील सम्पन्नता का पुष्ट प्रमाण है। फिर स्वामिन्! आपका यह कैसा निर्णय?

राम ने तनिक गंभीरता से सुना पर जनाक्रोश का प्रभाव उनके मन पर इस कदर आया हुआ था कि सीता के त्याग से कम कठोर कदम का कोई प्रभाव नहीं होना था।

अन्ततः सारे तर्क-वितर्क सुनने पर भी राम का निर्णय नहीं बदला। उन्होंने इसे व्यक्तिगत प्रश्न मानकर सबको निरूत्तर कर दिया।

लक्ष्मण ने एकान्त में पुनः राम से आत्म निवेदन करते हुए कहा-भैया! आपको धैर्य से काम लेना चाहिये। कहीं ऐसा न कि हो कि बाद में आपको अपने फैसले पर पछताना पड़े। पर राम एक भी शब्द सुनने को तैयार नहीं थे।

ऐसा भी नहीं था कि वे सीता के सतीत्व के संदर्भ में संदिग्ध थे पर डंडे के बल पर जनाक्रोश दबेगा नहीं, अपितु अधिक भड़क उठेगा। एक तरफ खाई है, एक और कुआं। बीच में खड़े राम। लक्ष्मण के सौ-सौ बार समझाने पर भी फैसला नहीं टला। लक्ष्मण की आँखों में सावन-भादो उतर आया।

एक सन्नारी-महासती का त्याग, वह भी लोगों की बातों के बहकावे में आकर। पर कोई उपाय न था। राम मन को कठोर करके निर्णय कर चुके थे।

सेनापति कृतान्तमुख के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। राम से सीता को अलग करने का अर्थ है-शरीर से

श्वास को और फूल से सुगंध को अलग करना।

जब लक्ष्मण की बात भी नहीं सुनी गयी तो फिर मेरा क्या है? उसने भारी मन से आज्ञा शिरोधार्य की।

ओह ! मैं एक महापाप करने जा रहा हूँ। स्वामिनी का वन में परित्याग । गुलामी का ये जीवन भी कोई जीवन है। काश! इसी वक्त मेरे प्राण निकल जाये ! भगवान मुझे इस दुनिया से उठा ले !

वन-विहार के समाचार पाकर सीता आनंद से भर गयी पर ये बिन मौसम की बरसात कैसी?

रथ तेजी से नदी, नालों, घाटियों को पार करके सिंहनाद अरण्य की ओर दौड़ने लगा।

सीता चौंकी। कहीं मेरे साथ छल तो नहीं हो रहा। उसने कृतांतमुख से पूछा पर वह मौन था।

सीता की धड़कनें बढ़ गयी। विचार-तन्त्र तेजी से घूमने लगा। दो-चार बार पृच्छना की-अरे सिपाही! कहाँ है अयोध्यानरेश का रथ? कहाँ है वनोद्यान? तुम मुझे किस बियावने-डरावने रास्ते पर ले जा रहे हो?

जब उत्तर नहीं मिला तो वह गरजी-ए सिपाही! रथ को रोक दो। तुमने सुना कि नहीं?

रथ रूका तो सही पर सिंहनाद जंगल के छोर पर। कृतांतमुख की आँखों से चौधार अश्रुधार बह रही थी।

वैदेही कुछ भी समझ नहीं पा रही थी। शब्दों का मौन रूदन को और ज्यादा रहस्यमय बना रहा था।

अरे सिपाही! बता तो सही। ये आँसू.....ये चुप्पी.....ये कांपती काया....! आखिर कारण क्या है ? पर कृतान्तमुख की जीभ जैसे तालु से चिपक गयी थी।

सीता बोली-ये तुझे क्या हो गया है? जो भी बात है, साफ साफ बता। मेरी ओर से तूं पूर्णतया निर्भय है।

कुछ पलों बाद कृतांतमुख ने आखिर ताकत जुटायी और कांपते होठों से बोला-स्वामिनी....। सम्राट् श्रीराम के आदेशानुसार मैं आपको....!

क्या....? बोल तो सही। डरने की कोई बात नहीं है।

वह रोता हुआ अटकती शब्दावली में बोला-आपको इस सिंहनाद अरण्य में छो.....ड......ने....के....लि...ए... आ.. ..या....हूँ। श्रीराम ने आ...प...का प...रि...त्या...ग कि...या है। परित्याग शब्द सुनते ही सीता मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़ी। पर शीतल पवन के झोंकों से सीता शीघ्र ही होश में आ गयी। कृतांतमुख की जान में जान आयी।

'परित्याग' सुनकर सीता द्वारा मूर्च्छा की प्राप्ति

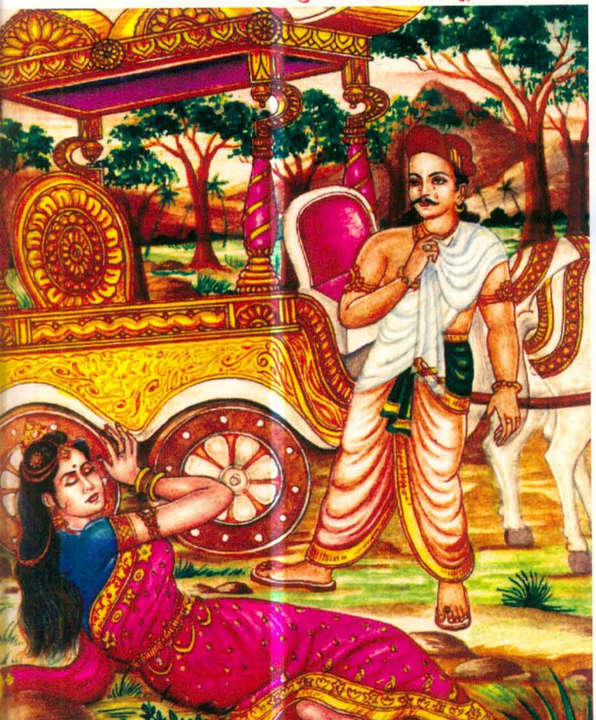

ओह! मेरा भाग्य मुझसे रूठ गया। मेरे सारे सपने कहीं खो गये। क्या-क्या नहीं सोचा था मैंने! रघुकुल के आँगन में किलकारियाँ गूंजेगी। तोरणद्वार सजेंगे। मिठाईयाँ बटेंगी। उत्सव-महोत्सव का वातावरण बनेगा पर ये क्या हो गया। मेरा वन में परित्याग ! कुछ पलों बाद हल्की होने पर सीता ने कहा-सेनानी! आखिर मेरे त्याग का कारण क्या है?

माताजी! आपके चरित्र के प्रति लोगों में फैले जनापवाद को लेकर ही राजा श्रीराम ने आपका परित्याग किया है।

चरित्र के संदर्भ में। किसके साथ?

रावण के साथ । कृतांतमुख धीरे से बोला।

उस दुष्ट के साथ? अरे! मैंने तो उसकी कलमुँही सूरत भी नहीं देखी। तो स्वामी मेरे चारित्र के प्रति संदिग्ध है?

नहीं देवी! वे चरित्र के प्रति शंकित नहीं, विश्वस्त है पर जनापवाद का तूफान शान्त करने के लिए ही यह कदम उठाया है। और वे स्वयं नहीं जानते कि यह कुचक्र किसने चलाया है।

तो केवल लोगों के कथन पर मेरा परित्याग कर दिया?

हाय! मेरी किस्मत ही रूठ गयी है मुझसे। यदि भाग्य राजी होता तो क्या वे मुझसे पूछते नहीं। मैं सामने ही दूध का दूध और पानी का पानी कर देती। बहुत सुन्दर फर्ज निभाया पतिव्रत का गर्भवती पत्नी को वन में छोड़कर! वाह! पुरुष तो सदा से नारी के साथ अत्याचार करता आया है और वह सहनशीला सदा माफ करती रही है। पर मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने वाले श्रीराम की भी कोई तो मर्यादा थी? न स्पष्टीकरण किया, न कुछ बोले। खैर....! पर उनको रोकने वाला कोई न था। देवर लक्ष्मणजी, पवनंजय आदि ने कुछ नहीं कहा?

कहा, बहुत कहा, दबाव डाला। लक्ष्मणजी दुःखी, उदास और अत्यन्त व्यथित थे पर स्वामी अपने फैसले पर अटल थे। कोई भी उनके निर्णय को बदल न पाया।

वाह स्वामिन् वाह ! आपने भी ये क्या किया? त्याग करना ही था तो खुलासा तो करते। मुझे तुम्हारे महलों की और मखमली शय्या की कोई जरूरत नहीं थी। मैं न छप्पन भोगों की भूखी थी, न मुझे स्वर्णाभूषणों की आकांक्षा थी। शील मेरा परम गहना, परम धन है। चरित्र का अपवाद हटने पर आप मेरा त्याग करते तो मुझे कोई दुःख नहीं होता पर यदि निर्दोष साबित हुए बगैर ही प्राणान्त हो गया तो पीढ़ी दर पीढ़ी चारित्र भ्रष्टा के रूप में मुझे सम्बोधित किया जाएगा।

आपको क्यों नहीं सुझी सद्बुद्धि! क्यों मेरे साथ अन्याय किया....! अरे! ये सारी दुनिया स्वार्थी है। अपने नाम-काम के लिये अपनों का तो क्या, गले-सड़े शरीरांग का त्याग करते भी विलम्ब कहाँ लगता है दुनिया वालों को।

अचानक सीता का चिन्तन-चक्र घुमा। नहीं....नहीं.... इसमें दोष न स्वामी का है, न सेवक का। दोष पूर्वकृत कर्मों

का है। मेरे कर्म ही मुझे सता रहे हैं, वे तो निमित्त मात्र हैं।

कृतांत ! मर्यादा पुरुषोत्तम को मेरा ये संदेश जरूर सुनाना कि लोगों की बातों पर भरोसा करके मुझे तो छोड़ दिया पर मिथ्यात्वी की बातों में फंसकर जिनधर्म को कभी मत छोड़ना। सदैव न्याय-नीति के मार्ग पर चलते हुए तेजस्वी... यशस्वी बनना...रघुकुल की गरिमा में चार चाँद लगाना... दीर्घायुषी बनना। जाने-अनजाने इस नाचीज दासी से कोई गलती हुई हो तो क्षमा करना।

सेनानी! तूं लक्ष्मण को यह कहना मत भूलना कि भाभी के अभाव में आपका भैया के प्रति दायित्व बढ गया है। उनकी सार संभाल लेना और आपने मेरे चरित्र के प्रति जो विश्वास व्यक्त किया, उसके लिये सीता सदैव उपकृत रहेगी। अंजनापुत्र हनुमान, विभीषण आदि के प्रति भी मंगलकामनाएँ व्यक्त करना। कहती हुई सीता की आँखें अनराधार बहने लगी। कृतांतमुख के भी नयन नम हो गये।

कुछ देर बाद मन को मजबूत करके बोली-जाओ कृतांत! जाओ, मैं स्वयं भाग्य से संघर्ष करूंगी। कब मिलेंगे, पता नहीं। मिलेंगे या नहीं, पता नहीं। कृतांत ने चरणों का स्पर्श किया और उदास मन से प्रत्यावर्तित हो गया।

डरावना-घना जंगल ! सीता की रूह कांप उठी। एकमना होकर उसने महामंत्र नवकार का स्मरण किया और चिन्तन बदला-कोई साथ नहीं तो क्या हुआ। मेरी सांसों में है अरिहंत देव! आँखों में है संकल्प की ज्योति! चत्तारि मंगलम् का निर्मल ध्यान धरती हुई वह चल पड़ी दुर्गम राह पर। पाँव छिल गये काँटों से। रक्त बह चला। कोई भी नहीं है उसके आँसू पौंछने वाला... पर अपार पीड़ा में भी सीता चली जा रही है अनजानी डगर पर। दिन बीतते जा रहे हैं। सीता अनुकूल स्थान पाकर कहीं थोड़े दिन रूकती है फिर चलती है और एक बार....!

एक शिला खण्ड पर उपस्थित सीता ने देखा कि अश्वारूढ़ कुछ लोग मेरी ही दिशा में आ रहे हैं। लगता है, डाकूओं का गिरोह है। शील की सुरक्षा के संदर्भ में हजारों प्रश्न आँखों के सामने दौड़ने लगे।

उसने सारे आभूषण उतारकर एक पोटली में बांध दिये। वे अश्वारूढ़ लोग ज्योंहि निकट आए और कुछ बोले, उससे पहले ही सीता मुखर हुई-ये पोटली लो और चले जाओ। उन्होंने पोटली को खोला तो आश्चर्यचकित हुए बगैर न रहे। इतने मूल्यवान् आभूषण!

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया-कौन हो तुम? सीता कांपती हुई मौन थी। उसने पुनर्प्रश्न किया-बहिन! कौन हो तुम ? इस अरण्य में अकेली क्यों हो? 'बहिन' शब्द ने कुछ हद तक सीता को भय मुक्त किया तथापि उसे परिपूर्ण हार्दिक आश्वासन नहीं मिला था। सीता के मौन.... कांपती काया और भयभीत नयन देखकर एक व्यक्ति बोला-देवी! घबराने की कोई जरूरत नहीं है। फिर एक सर्वांग सुन्दर दलनायक की ओर अंगुली निर्देश करता हुआ बोला-ये स्वनामधन्य पुण्डरीक नगर के अधिपति सम्राट वज्रजंघ है। न्याय, नीति, सदाचार, प्रजावत्सलता और सौम्य व्यवहार के कारण जन-जन के हृदय-हार बने हुए हैं। आप जो भी बात हो, निस्संकोच अवश्य कहिए। गहरा स्नेहसिक्त दबाव पाकर सीता के मुख से आप बीती स्वतः प्रकट हो गयी।

सम्राट् वज्रजंघ का निवेदन

सम्राट् वज्रजंघ बोले-बहिना! निश्चित रूप से तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है। कुचक्र चलाने वालों ने तो महापाप किया ही है पर वन में परित्याग करके अयोध्येश राम ने भी कोई सही कदम नहीं उठाया है। पर अब ये ध्यान रखना कि तूं असहाय नहीं है। तुझे पुकार रहा है पुण्डरीक नगर का भव्य राजप्रासाद। वहाँ चल। भ्रातृत्व की छाया में तुझे कोई दु:ख नहीं होगा।

यद्यपि 'बहिन' शब्द के उद्‌बोधन एवं शब्दों की माला में पिरोयी हुई हृदय की शुभकामनाओं ने सीता को निश्चिंत कर दिया था तथापि कर्म को प्रमुखता देती हुई वह वह बोली-राजन्! जब स्वामी ने ही ठुकरा दिया तब फिर जीना भी कैसा? मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिये आप।

नहीं....नहीं....! ऐसा न कहो। अभी तुम गर्भवती हो, अतः तुम्हें अपने लिये ही नहीं, गर्भस्थ सन्तान के लिये भी जीना है। आग्रह में छलकता प्रेम, पारदर्शी व्यवहार और भावपूर्ण निवेदन ने सीता को पुण्डरीक नगर की ओर कदम बढ़ाने को मजबूर कर दिया।

राम कब से ही कृतान्तमुख की प्रतीक्षा कर रहे थे। शाम होते होते कृतान्त आज्ञा क्रियान्वयन के सूचनार्थ राम-दरबार में उपस्थित हुआ।

सीता का सन्देश सुनाता हुआ कृतांत बोला-स्वामिन् ! आपका निर्णय सीता सुन न सकी, प्रथम क्षण में ही मूर्च्छित हो गयी। थोड़ी देर बाद जब होशोहवास में आयी तब बहुत व्यथा व्यक्त की। आखिरी संदेश देते हुए आपको सदैव धर्माभिमुख रहने की प्रेरणा दी। संदेश सुनाते समय कृतांत की भावपूर्ण मुद्रा, स्नेहिल अभिव्यक्ति, शब्दों में टपकती निश्छल हार्दिक आत्मीयता इतनी मधुर, हार्दिक और अकृत्रिम थी कि राम को ऐसा लगा कि सीता सामने अवतरित हो गयी है।

राम द्वारा पश्चात्ताप एवं लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना

सन्देश पूरा होते होते राम का सिर चकराने लगा। जल्दबाजी और अधैर्य में हुए गलत निर्णय के प्रति पीड़ा का पार न रहा और मूर्च्छित होते हुए वे जमीन पर गिर पड़े। लक्ष्मण दौड़े दौड़े आए। प्राथमिक उपचार से ही मूर्च्छा टूट गयी।

सीते ! सीते ! कहते हुए राम कल्पांत रूदन करने लगे। अरे ! मैंने ये क्या किया? एक सन्नारी....एक पतिव्रता महासती का परित्याग करके मैंने अपने हँसते-खेलते जीवन-उपवन को उजाड़ दिया। हाय! हाय! सौमित्र के दस बार समझाने पर भी मैं सावधान क्यों नहीं हो पाया।

लक्ष्मण धीरज बंधाते हुए बोले-भैया! कर्म जगत् में कोई भी समर्थ पुरुष होनी को अनहोनी और अनहोनी को होनी नहीं कर सकता। संभवतः भाग्य विधाता को यही मंजूर था।

पर अब सीता के बिना कैसे जी पाऊंगा?

भैया! भाभी कठोर संकल्प की धनी और सहनशीला व स्वाभिमानी है। वे पुनः लौटकर आपके महल की दहलीज पर पाँव रखे, यह असंभव ही है पर यदि आप स्वयं जाकर निवेदन करें तो संभवतः यह बात संभव हो सकती है। कहते हुए लक्ष्मण ने राम की आँखों में झांका, जो सीता की जुदाई में निस्तेज हो गयी थी ।

राम को सीता के बिना महल ही नहीं, जीवन भी सूना-सूना व खाली-खाली प्रतीत हो रहा था। शीघ्र ही लक्ष्मण व कृतांतमुख के साथ वे सिंहनाद अरण्य की तरफ प्रस्थित हुए।

हिंस्र पशुओं की भयानक आवाजें सुनकर दिल बैठ गया। राम सीता के पदचिह्नों पर चलते हुए खोजने लगे पर वे चिह्न कुछ दूरी पर जाकर अदृश्य हो गये।

कहाँ गयी होगी सीता! क्या इस खतरनाक वन में जीवित बच सकती है। क्या चीता, सिंह ने उसको अपना आहार नहीं बनाया होगा? सोचते-सोचते उनकी आँखें सजल हो गयी। नीर बिन तड़फती मीन की भाँति राम सीते! सीते! करते हुए पुकारने लगे पर उसे पा न सके। उसकी मधुर-मंजुल स्मृतियों के सहारे शेष उम्र को काटना उनकी मजबूरी बन

गयी। इस कुचक्र को चलाने वाली रानियों को भी अपने अपराध की सजा मिल गयी। पहले उनके कक्ष में कभी-कभी राम आते थे, बतियाते थे, उनके सुख-दुःख की खबरें भी लेते थे पर अब तो उनके दर्शन ही दुर्लभ हो गये।

राम का दिन तो राज-काज में बीत जाता पर रात सीता की स्मृतियों की सतरंगी बारात ले आती और उन यादों में ही रात कट जाती।

इधर गर्भावधि की पूर्णता के उपरान्त सीता ने तेजस्वी पुत्र-युगल को जन्म दिया। नगर सजा। तोरणद्वार सजे। रंगोली सजी। हर्ष और आनंद की शहनाईयाँ बजी।

शिशुद्वय का मुख देखते ही सीता को राम की याद आ गयी। पर नियति के आगे वह लाचार थी।

नामकरण की विधि सानंद सम्पन्न हुई। तेजस्वी राजकुमारों का नाम रखा गया-लव और कुश। सीता के जीवन में एक बार फिर बहार छा गयी। वह पुत्रों के सर्वांगीण विकास के लिये तत्पर हो गयी। शारीरिक विकास के साथ मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास भी अपेक्षित था। उपाध्याय सिद्धार्थ के सानिध्य में गुरुकुल में रहकर लव और कुश हर क्षेत्र में तीव्र गति से पारंगत बन गये।

क्रमशः यौवनावस्था सामने थी। राजा वज्रजंघ ने अपनी पुत्री शशिकला का विवाह लव के साथ कर दिया। उन्हें लगा कि कुश के लिए पृथ्वीपुर के अधिपति पृथु की पुत्री कंचनमाला उपयुक्त है। इस सम्बन्ध हेतु प्राप्त हुए संदेश पर व्यंग्य कसते हुए राजा पृथु ने उत्तर दिया-कुश का कुल अज्ञात है अतः मैं इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं कर सकता। वज्रजंघ ने कहा-मेरी बात मानो क्योंकि कुल की पहचान क्षत्रियत्व से होती है। लव और कुश की शूरवीरता पर शक को कोई स्थान नहीं है। मैंने भी अपनी पुत्री को लव के साथ ब्याहा है।

पृथु ने कहा-राजन्! मैं तुम्हारा अनुसरण नहीं कर सकता। तुम यदि अपनी बेटी को भिखारी के पल्ले बांध लो तो मैं....।

बीच में ही वज्रजंघ बोले–देखो! तुमने सहर्ष यह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया तो युद्ध में बंदी बनाकर भी कंचनमाला को कुश के लिये प्राप्त करके रहूँगा। इतना कहने पर भी पृथु टस से मस न हुआ।

दोनों रणमैदान में आ भिड़े।

वज्रजंघ के अल्प सैन्य दल के पाँव स्वल्पकाल में ही उखड़ गये। वज्रजंघ पृथु द्वारा बंदी बना लिये गये। तत्काल लव और कुश सशस्त्र युद्ध भूमि में आए और अपने युद्ध कौशल से पृथु की सेना में खलबली मचा दी। उनके दिव्य युद्ध संचालन के सन्मुख पृथु की एक न चली।

भ्राताद्वय लव-कुश की वीरता

मृत्यु को सम्मुख देख पृथु बोले–अपराजेय लव! मैं अपनी पुत्री का विवाह कुश के साथ करने के लिये तैयार हूँ।

पहले तो अज्ञातकुल का बताकर हमारा अपमान किया और अब संकटकाल में मजबूरीवश यह कार्य कर रहे हो। यह सम्भव नहीं होगा। उन्होंने युद्ध जारी रखा। आखिर पलायन कर पृथु को वज्रजंघ की शरण लेनी पड़ी। वज्रजंघ के कहने पर लव-कुश ने पृथु को प्राणदान दिया।

जंगल में मंगल महोत्सव मनाया जाने लगा। विवाह की तैयारियाँ होने लगी। नारद ऋषि यथासमय पहुँचे। उन्होंने कहा–पृथु! पुत्री के विवाहोत्सव में खुशी के स्थान पर खिन्नता कैसी?

मुने ! लव-कुश का कुल ज्ञात नहीं है, इसलिये मैं उदास हूँ। मजबूरी से यह कार्य कर रहा हूँ।

ऋषि मुस्काते हुए बोले-अरे! तुम भी कितने नादान हो। अद्भुत शौर्य और गांभीर्य देखने के बाद भी क्या लव-कुश का कुल अज्ञात है तुमसे? ये तेजस्वी राजकुमार किसी ओर के नहीं, अयोध्यापति राम के पुत्र और सीता के अंगजात हैं। यह ज्ञातकर सम्राट पृथु की प्रसन्नता का पार न रहा और लव-कुश के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने पूछा-महामुने! हम श्रीराम के पुत्र हैं तो फिर हमारा लालन-पालन अयोध्या से दूर पुण्डरीकपुर में क्यों हुआ? नारद ऋषि के मुख से अतीत की गाथा जानकर उनका वीरत्व जाग उठा। कार्य पूर्णाहूति करके वे माता सीता के पास पहुँचे।

पिता के साथ युद्ध की बात सुनकर सीता चौंकी। उसने समझाते हुए कहा-देखो! बड़ों के साथ इस प्रकार का व्यवहार उचित नहीं कहा जा सकता। तुम तो केवल विनय और विवेक से उनकी गरिमा को आत्मसात् करो।

नहीं माँ .....नहीं! तुम्हारे साथ हुए अन्याय का बदला लिये बिना हम चैन की सांस नहीं ले सकते। हम भी उन्हें दिखा देंगे कि दुष्ट चरित्रा के पुत्र कैसे होते हैं और शीलवती के पुत्र कैसे होते हैं?

सीता ने समझाने की भरसक कोशिश की पर लव-कुश की भुजाएँ नाच रही थी, क्षात्रतेज अंगड़ाई ले रहा था। अपने निर्णय पर अटल रहते हुए लव-कुश सैन्यदल से सुसज्जित होकर अयोध्या पहुँचे।

अकस्मात् छाये संकट के बादलों से अयोध्या में आतंक फैल गया। राम को क्या पता था कि सामान्य से दिखने वाले दोनों युवा प्रचण्डप्रतापी हैं। कृतांतमुख की करारी हार ने अयोध्यापति को आश्चर्य में डाल दिया।

**सीता द्वारा लव-कुश को युद्ध का इंकार**

इधर नारद ऋषि रथनुपूरपुर के महाराज भामण्डल की सभा में पहुँचे और जानकी के समाचार दिये। भामण्डल अविश्वास भरे शब्दों में बोला–महात्मन्! आप भी कैसी अनहोनी बात कर रहे हैं। सिंहनाद अरण्य के हिंस्र प्राणियों के मुँह में पहुँचकर क्या कोई जीवित लौटा है?

नारद ऋषि बोले–मैं अपनी सगी आँखों से सीता को देखकर आया हूँ। तुम्हें यदि मेरे कथन पर विश्वास नहीं है तो पुण्डरीकपुर जाओ और देख लो।

पल भर का भी विलम्ब किये बिना विमान गन्तव्य की ओर उड़ चला। सीता को भामण्डल लगभग दो दशक बाद देख रहा था। उसकी आँखें हर्ष से भर आयी। सीता भी प्रसन्नचित्त बनी।

सारी आप बीती सुनते हुए भामण्डल ने जब लव और कुश के द्वारा अयोध्या पर आक्रमण करने की बात सुनी तो नाराज और भयभीत होता हुआ बोला–बहिना! प्रज्ञाशीला होने पर भी तुमने ये क्या किया? राम और लक्ष्मण के सामने भला कोई ठहर पाया है! कहीं कुछ अनर्थ घटित न हो जाए।

सीता ने कहा–मैंने तो लाख बार मना किया पर वे माने तब न ? वे तो बस अन्याय का बदला लेना चाहते हैं। स्थिति का गंभीरता से आंकलन करता हुआ भामण्डल सीता सहित शीघ्र ही अयोध्या पहुँचा।

माँ के साथ एक अनजान व्यक्तित्व को देखकर लव–कुश की आँखें आश्चर्य से चौड़ी हो गयी। सीता ने भामण्डल का परिचय करवाते हुए कहा–पुत्र ! ये तुम्हे मामा भामण्डल हैं। लव–कुश शीघ्र चरणों में झुके। भामण्डल ने उन्हें गले लगा लिया।

भामण्डल ने समझाते हुए कहा–देखो। तुम्हारा यह वर्तन अनुचित है। अन्याय के प्रति दु:ख होना अत्यन्त स्वाभाविक है पर तुमने प्रतिशोध का जो तरीका चुना है, वह सर्वथा गलत है। तुम तो विनम्र व सुज्ञ हो और व्यवहार को समझते हो। ऐसा करने से पूज्यजनों का अपमान होगा।

लव बोला–मामाश्री! हम उन्हें बता देना चाहते है कि कुशीला के पुत्र कैसे होते हैं और सुशीला के पुत्र कैसे? फिर उन्होंने भी तो मेरी माँ का परित्याग करके अपमान और अपराध किया है। यदि हम माँ के शील की प्रतिष्ठा के लिये युद्ध करते हैं तो आप ही बताईये, इसमें पूज्यजनों का कौनसा अपमान है। हम तो कहते हैं कि आपको भी हमारी ओर से लड़ना चाहिए। आखिर सीता आपकी बहिन है। क्या बहिन के प्रति आपका कोई फर्ज नहीं बनता?

लव और कुश के युक्तिसंगत तर्कों के सामने भामण्डल को न केवल निरुत्तर होना पड़ा अपितु युद्ध के लिये भी सन्नद्ध होना पड़ा। इस बार रणमैदान में सामने हनुमान थे। भामण्डल को प्रतिपक्ष में देखा तो बोले–अरे! आप विपक्ष में कैसे?

भामण्डल बोला–मैं तो अपने पक्ष में ही हूँ।

पहेली सुलझने के स्थान पर अधिक उलझ गयी। हनुमान बोले–तो क्या तुम राम के पक्ष में नहीं हो?

उसने कहा–नहीं! मैं तो सीता के पक्ष में हूँ, श्रीराम के पक्ष में नहीं।

आश्चर्य दुगुना हो गया। सीता का पक्ष कहाँ से आया?

अंजनापुत्र को पास बुलाकर भामण्डल ने सारी बात बता दी।

माता सीता जीवित है। सुनकर उनकी प्रसन्न्ता का ठिकाना न रहा। कहाँ है माता सीता? मैं उनके दर्शन करने के लिये लालायित हूँ। और ये दो तेजस्वी युवराज कौन हैं?

भामण्डल ने जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा–ये दोनों तेजस्वी राजकुमार कोई और नहीं, अपितु अयोध्या के गौरव और अयोध्यापति के अंगज हैं। और तुम माता सीता के दर्शन करना चाहते हो तो चलो मेरे साथ! सीता माता के दर्शन कर हनुमान की आँखें खुशी से भर आयी।

हनुमान के बाद सुग्रीव युद्ध मैदान से खिसके कि सेना में खलबली मच गयी। एक-एक करके महारथी रणभूमि से गायब होने लगे। राम-लक्ष्मण के आश्चर्य का पार न रहा।

आक्रोश से भरकर वे लव और कुश के सम्मुख युद्धार्थ प्रस्तुत हुए कि मन का वातावरण ही बदल गया। क्रोध की ज्वालाओं का स्थान प्रेम की अमृत-वर्षा ने ले लिया। स्नेह के तंतु झंकृत हो उठे। जितना देखे, उतना ही आनंद बहे, उतनी ही अतृप्ति हो।

ओह! ये मासूम राजकुमार हैं कौन? इन्हें देखकर भला क्यों दिल कमल खिल उठा है? क्यों इतना प्रेम उमड़ रहा है पर प्रश्न करें तो भी कैसे?

चुपचाप खड़े राम-लक्ष्मण को देखकर लव-कुश बोले-आप युद्ध लड़ने के लिये आए हैं कि टहलने? यह समर-भूमि है, मनोरंजन का स्थल नहीं। जल्दी से शस्त्र उठाओ। महारथियों! हमने तो आपकी भारी प्रशंसा सुनी है पर आपकी कांपती भुजाओं को देखकर विश्वास ही नहीं होता कि इन्हीं भुजाओं से महारथी रावण का अन्त हुआ है। कहीं ये कपोल कल्पनाएँ तो नहीं।

राम बोले-देखो! तुम दोनों नहीं जानते कि युद्ध क्या होता है? तुम्हारी कोमल-कच्ची उम्र देखकर हमें तुम पर दया आ रही है।

कुश जरा तीखे तेवर में बोला-श्रीमान्! आप खुद पर दया कर लीजिये,यही पर्याप्त होगा।

कुछ पलों में युद्ध शुरू हो गया। लव-कुश का हर निशाना अचूक था तो राम और लक्ष्मण के बाण आज धोखा दे रहे थे। इतने में कुश के धनुष से छूटा बाण लक्ष्मण को लगा और वे मूर्च्छित हो गिरकर पड़े। राम के लिये चिन्ता का ही नहीं, प्रतिष्ठा का भी प्रश्न खड़ा हो गया। वे दुगुनी शक्ति से सामना करने लगे पर पल-पल हार ही हाथ लगने से राम हताश हो गये।

इधर विविध उपायों से मूर्च्छा टूटने पर लक्ष्मण रणभूमि में आ डटे और लम्बी असफलता से रूष्ट और क्रुद्ध होकर चक्र चला दिया। चक्र अपनी मर्यादा में था। दोनों कुमारों का शिरच्छेद करने के स्थान पर उनकी प्रदक्षिणा देकर स्वस्थान पर लौट आया।

अब तो राम-लक्ष्मण को पक्का भरोसा हो गया कि हो न हो, ये दोनों स्वजन हैं अन्यथा चक्र का प्रयोग यों विफल न होता। पर पूछे तो कैसे?

लव-कुश की आश्चर्यकारी युद्ध-कला

इतने में युद्धभूमि में नारद ऋषि आए। अरे! प्रेम और उल्लास के स्थान पर निराशा और भय कैसा? हाथों में फूलमालाओं के स्थान पर धनुष-बाण कैसे?

राम बोले-कैसा उल्लास? कैसा प्रेम? कैसी फूलमालाएँ ?

अरे! तुम अब तक इन दोनों वीरों को पहचान नहीं पाएँ? ये दोनों कोई ओर नहीं, अयोध्या के अवतंस ओर राम-जानकी के पुत्र लव और कुश हैं।

क्षणार्ध में वातावरण बदल गया। राम और लक्ष्मण रथ से उतरकर लव कुश की ओर चल पड़े। लव-कुश ने भी शस्त्र छोड़े और पूज्यजनों की ओर चल पड़े। हर्ष और बधाई की बहार छा गयी। लव-कुश राम चरणों में करबद्ध हो प्रणत हुए। राम ने उन्हें गले से लगा लिया। लव-कुश ने अनुचित की क्षमायाचना की। चाचा लक्ष्मण को प्रणाम किया। प्रशंसा के साथ उन्होंने दोनों वीरों का माथा चूमते हुए पीठ थपथपायी।

अब तो अयोध्या में जैसे बिन बुलायी खुशी की बारात आ गयी। कुंकुम उड़ने लगा। इत्र का छिड़काव हुआ। पूरा नगर सागर की भाँति उमड़ पड़ा आनंद और बधाई के इन पलों को बधाने के लिये। फूल, आशीष और शुभकामना की बरसात में भीगते भीगते दोनों कुमार राजप्रासाद में पहुँचे। सीता ने पिता-पुत्र मिलन के मंगल दृश्य को सानंद निहारा पर उसमें शरीक होने की बजाय विमान में बैठकर पुण्डरीकपुर की ओर चल पड़ी क्योंकि उसे नारी जाति के गौरव की रक्षा जो करनी थी ।

लक्ष्मण ने राम से निवेदन किया-अयोध्येश ! यदि आपकी आज्ञा हो तो माता सीता को अयोध्या ले आए। उन्हें अब तक तो पुत्रों का सहारा था, अब तो वे सर्वथा निराधार हो गयी हैं।

राम ने ही नहीं, सभी ने वासुदेव लक्ष्मण के निवेदन का सम्मान किया।

राजाज्ञा से सुग्रीव पुष्पक विमान लेकर पुण्डरीकपुर मैया सीता के उपपात में पहुँचे और

मिलन के पलों में आनंद के अश्रु

अयोध्या चलने का निवेदन किया।

सीता ने कहा–मुझे अयोध्या आने में कोई रस नहीं है। मैं भूली नहीं हूँ वे क्षण, जब स्वामी ने प्राणलेवा सिंहनाद जंगल की ओर अकेला धकेला था। मुझे उनकी दया और महलों की कोई भूख नहीं है। मैं यहीं सुखी हूँ।

दो पल रूककर सीता बोली–हाँ! एक शर्त पर मैं अयोध्या आ सकती हूँ यदि स्वामी कसौटी पर चढ़ने की आज्ञा दे तो। मैं शील को निकष पर चढाना चाहती हूँ। कहीं कलंक का यह काला धब्बा धोये बिना ही मेरी मृत्यु हो गयी तो मेरी आत्मा को कहीं भी शान्ति नहीं मिलेगी।

सुग्रीव ने दो तीन बार अपना निवेदन दोहराया। पर सीता का संकल्प बल अटूट था।

अयोध्या में उत्कंठा से सुग्रीव के लौटने की प्रतीक्षा की जा रही थी। पुष्पक विमान को देख सभी की आँखें आनंद से भर गयी पर सीता को सुग्रीव के साथ न पाकर राम को तीव्र आघात लगा।

शर्त को स्वीकार किये बिना राम के पास सीता को अयोध्या लौटाने का कोई उपाय न था। उन्होंने निकष पर चढ़ने की आज्ञा दे दी। सीता अयोध्या पहुँची।

उसके महेन्द्र उद्यान में ठहरने का समुचित प्रबंध किया गया।

एकान्त में राम और सीता का वार्तालाप हुआ। मिलन के क्षणों में राम अपने कठोर व्यवहार एवं अविवेकपूर्ण निर्णय को लेकर खेद, अनुताप और पीड़ा से भरे हुए थे।

भावपूर्ण मुद्रा और स्नेहिल शब्दावली में बोले–सीते! मुझे माफ करना। मुझे इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिये था पर जनाक्रोश और जनापवाद की तीव्रता ने मुझे कठोर कदम उठाने के लिये मजबूर कर दिया पर ऐसा न समझना कि तेरे निर्दोष सतीत्व के सन्दर्भ में मेरे मन में कोई सन्देह है। मैं तेरे शुद्ध चरित्र के प्रति पहले भी असंदिग्ध

था, आज भी असंदिग्ध हूँ। फिर तूंने लव-कुश जैसे वीर पुत्रों को जन्म देकर सम्पूर्ण जगत को अपने सतीत्व का पुष्ट प्रमाण दिया है। इससे बड़ा दूसरा प्रमाण और क्या हो सकता है?

सीता ने दृढ़ स्वरों में कहा-आपके असंदिग्ध होने से सारी दुनिया असंदिग्ध नहीं हो जायेगी। मैं नहीं चाहती कि इस कलंक को लेकर मरूं।

तनिक गंभीर मुद्रा में राम प्रस्तुत हुए-सीते! निकष पर चढ़ना कोई सामान्य काम नहीं है। तुमने अपने आपको तोल तो लिया न!

सीता जरा तीखे तेवर में बोली-क्या कहना चाहते हैं आप? साफ साफ कहिये।

यही कि शील के प्रति रंचमात्र भी यदि कमजोरी हो तो मुँह से बात मत निकालना। कहीं लेने के देने न पड़.....!

राम वाक्य पूरा करें, उससे पहले ही सीता बोली-क्या कहा? कमजोरी! अरे! मैं कोई पुंश्चली या दुश्चरित्रा नहीं जिसे निकष पर चढने से पहले पलमात्र भी विचार करना पड़े या खुद को तोलना पड़े।

आप भी बड़े विचित्र हैं। एक तरफ तो मेरे सतीत्व के संदर्भ में निश्शंकता प्रकट करते हैं और दूसरी तरफ तोलने की बात करते हैं। मुझे तो लगता है आपके भी मन में वहम का कीड़ा कुलबुला रहा है। तत्पश्चात् तनिक संयत होकर बोली-आप कसम खाकर कहिये कि मेरे चरित्र में आपने कहीं कोई काला धब्बा या कुटिलता देखी है।

सीता की प्रभापूर्ण मुखमुद्रा राम देखते ही रह गये।

सीते! मेरे कहने का आशय यह नहीं था, जो तुम समझ रही हो। यह तो मात्र कसौटी पर चढ़ने के लिये पूर्व सजगता का संकेत था, फिर भी तुम्हारे मन को ठेस लगी, तदर्थ क्षमा मांगता हुआ मैं अपने शब्दों को वापस लेता हूँ। यह तो बताओ कि तुम किस प्रकार की परीक्षा देना चाहती हो?

सीता ने कहा-इसका निर्णय तो आपको ही करना है। आप कहे तो आकाश में अधर लटक आऊँ, कहे तो अग्नि-कुण्ड में प्रविष्ट हो जाऊँ। कहे तो कूप से कच्चे सूत से छलनी में पानी भर लूं, कहे तो करोड़ों अति-उष्ण सुईयाँ अंग-अंग में चुभा लूँ।

विचार विमर्श करके अग्नि परीक्षा का निर्णय लिया गया।

खुश्बू की तरह अग्नि परीक्षा का संवाद अयोध्या की हवा में प्रसारित हो गया।

अलसुबह हजारों लोग उस स्थान की ओर कदम भरने लगे, जहाँ आज अलौकिक घटनाक्रम घटित होना था।

बहुत बड़े मण्डप की रचना की गयी। अग्नि परीक्षा मण्डप की इस प्रकार रचना की गयी कि हर व्यक्ति इस अलौकिक दृश्य को आँखों की पुतलियों में कैद कर सके।

होंठ होंठ पर एक ही चर्चा थी।

अरे! इतनी कठोर परीक्षा! सीता के सतीत्व के सन्दर्भ में भला सन्देह कहाँ है...किसे है। लव-कुश जैसे महायोद्धा को जन्म देने वाली सीता जैसी महासती ही हो सकती है।

उसके शील-शैल से टकराकर रावण धूमिल हो गया। उसके अंग-अंग से शील की पवित्र सुगंध बहती है। अरे! वे जहाँ पग धरती हैं, वह स्थान भी पावन बन जाता है।

सूरज की तपन बढ़ रही थी, उससे कहीं ज्यादा गर्मी लोगों के हृदय में थी।

पाण्डाल खचाखच भरा हुआ था। उच्च स्थान पर श्रीराम, सीता सहित समस्त विशिष्ट व्यक्तित्व उपस्थित हो चुके थे।

राम ने खड़े होकर हाथ जोड़कर अयोध्यावासियों को प्रणाम किया, तत्पश्चात् हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए बोले-

अयोध्यावासियों! सीता की शील सम्पदा के प्रति मुझे अविश्वास न पहले था, न आज है। मैं चाहता तो सीता का परित्याग न करता पर मुझे अत्यन्त प्रिय होने से लोगों को मेरे व्यवहार में पक्षपात की गंध आती है। आज सारा जनापवाद निरुत्तर हो जाएगा।

कुछ लोगों का यह प्रश्न हो सकता है कि आखिर इतनी कठोर परीक्षा की अनिवार्यता क्यों है? अग्नि में तपे बिना सोना कुंदन बनकर कैसे निखरेगा? आज सीता का सतीत्व कुंदन की भाँति निखरकर/चमककर अयोध्या के स्वर्णिम/ऐतिहासिक पन्नों में एक अविस्मरणीय पृष्ठ जोड़ देगा। मेरा मानना है कि सीता अग्नि-स्नान के माध्यम से इक्ष्वाकु कुल और रघुवंश के गौरवशाली दस्तावेज पर स्वर्णकलश चढ़ा रही है।

राम के आसन ग्रहण करते ही सीता खड़ी हुई। सौम्य-शिष्ट अभिवादन के बाद मुखरित हुई-शील इस दुनियाँ का सर्वोत्तम-सर्वश्रेष्ठ धन है। शील नारी का श्रृंगार और जीवन का उपहार है। कुटिया में रहकर या वनों में विचरण करके भी जो इस परम धन का जतन करता है, वह लौकिक और लोकोत्तर, दोनों जगत में सुयश पाता है।

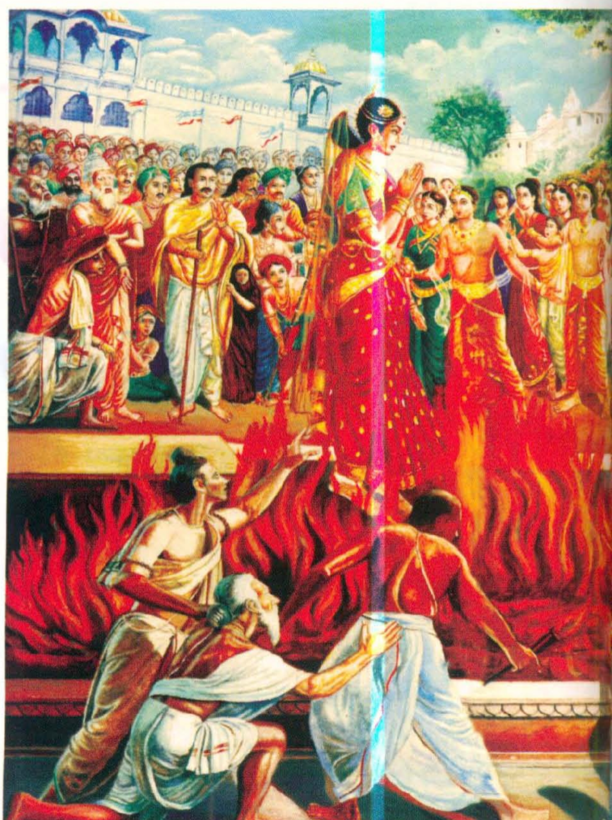

श्रीराम के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए सीता ने कहा-मैं अयोध्यापति मर्यादा पुरुषोत्तम की कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने कसौटी पर चढ़ने की आज्ञा देकर निर्मल शील को प्रमाणित करने का उत्तम अवसर दिया।

सीता मंच से उतरकर अग्नि कुण्ड के पास पहुँची।

दो क्षण पंच परमेष्ठी का स्मरण किया। तत्त्वत्रयी का ध्यान करके उच्च स्वर से बोली-अनन्त अरिहंत, सिद्ध और सर्वज्ञ ही नहीं, सूर्य-चन्द्र, अनगिनत तारें, दस दिक्पाल, नवग्रह, अष्ट मंगल, अधिष्ठायक देव-देवी, ये धरती-आकाश, हवाएँ- फिजाएँ इस बात की साक्षी हैं कि मैंने उठते-बैठते, सोते-जागते, किसी भी क्षण मन से, वचन से अथवा काया से श्रीराम के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष की कामना नहीं की है। मेरा शील जिनवाणी की भाँति निश्शंक है, चन्द्रमा की तरह सौम्य और निर्मल है, स्फटिक की भाँति पारदर्शी है, गंगा की तरह पावन है । यदि मैं सर्वात्मना शुद्ध, निर्मल, पवित्र, निष्कलंक हूँ तो यह अग्निशिखा मेरा स्पर्श पाते ही शीतल-जल कुण्ड में परिवर्तित हो जाये, अन्यथा मुझे तत्क्षण भस्मीभूत कर दें। कहती हुई सीता ने अपार जनमेदिनी के बीच धधकते

अग्निकुण्ड में छलांग लगा दी।

समय जैसे ठहर-सा गया।

सांसें रुक गयी। धड़कनें थम गयी।

पहला क्षण जहाँ पीड़ा से भरा था, वहीं दूसरा क्षण आश्चर्य से परिपूर्ण ! अब नजारा कुछ अनूठा-अलबेला था।

अग्नि की भयंकर लपटों के स्थान पर जल सरोवर! मध्य में कमलाकार में स्वर्ण सिंहासन और उस पर बिराजमान रत्न- मणियों से अलंकृत तेज बिखेरती शील की प्रतिकृति सीता।

सभी नयन विस्मय से भर गये।

शील की देवी की जय-जयकार से धरती-आकाश गूंज उठे। वातावरण शील की सुगंध से सुवासित हो गया। सीता के शील की महिमा दशों दिशाओं में व्याप गयी। नभतल पर देव विमान उतर आए। पुष्पों की वृष्टि हुई।

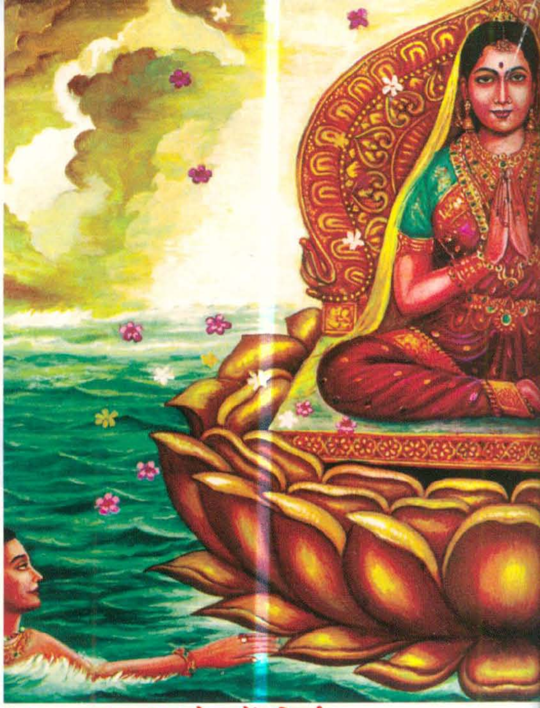

महाज्वाला का जलसरोवर में परिवर्तन

इतने में सरोवर का पानी तटों को तोड़कर बहने लगा। लोग भयभीत हो पलायन करते, इतने में तो पूरी अयोध्या जलमग्न हो गयी। जलस्तर बढ़ने लगा। सांसों के तार सुन्न होने लगे। अपने अपने इष्ट से प्राणों की अभ्यर्थना की जाने लगी।

इतने में सुनायी दिया-यह सब सतीत्व की महिमा है। तुमने माता सीता पर कलंक लगा कर जो पाप किया, उसकी ही यह सजा है।

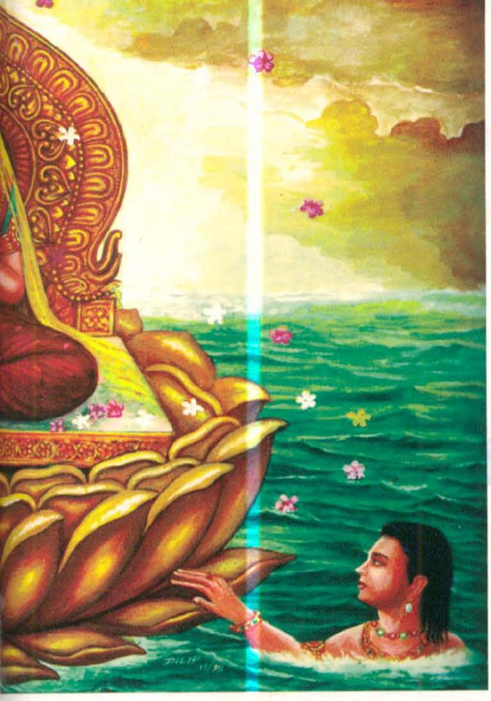

करबद्ध हो जनसमूह सीता के चरणों में पहुँचा-देवी! माते! आप तो करुणा और क्षमा की मूरत है। हम अज्ञानियों से जो अकृत्य हुआ, उसकी हम पुनः पुनः क्षमा चाहते हैं।

सीता ने ज्योंहि दोनों हाथ आकाश की ओर उठाकर रूकने का आह्वान किया कि दूसरे ही पल चमत्कार हुआ। जलस्तर तेजी से उतरने लगा।

उखड़ती सांसें जम गयी। प्रलय टल गया। स्वजन दौड़े दौड़े सीता के समीप पहुँचे।

लव-कुश की खुशी का कोई पार नहीं था। वे ममतामयी माँ की शीतल छाँव में आलोटने लगे। लक्ष्मण आदि रोमांचित हो नृत्य करने लगे। हनुमान झूम झूम कर प्रसन्नता व्यक्त करने लगा।

शील के अद्भुत जादु को देखकर आज राम के नयन हर्ष से भर आये। उनमें पूर्वकृत अपराध-बोध का अश्रुपूर्ण प्रायश्चित्त था। उन्होंने सीता की महिमा गायी, बधाई दी और अपराध की क्षमायाचना की। सीता को राजप्रासाद में प्रवेश करवाने को सभी उत्सुक हो उठे। पर अब सीता के कदम अन्तर्यात्रा की ओर मुड़ चुके थे।

ओह! यह संसार कितना विचित्र है, उससे भी विचित्र है कर्म की परिणति। वह कब रानी को दासी और दासी को रानी बना देती है, इसका अनुमान भी लगाना संभव नहीं है।

यहाँ पर हर बसंत पतझड़ में ढलता है, हर संयोग वियोग में बदलता है। हर जन्म मृत्यु के कगार पर पहुँचने के

लिये विवश है। कोई भी उसे रोकने में समर्थ नहीं। यदि जन्म-मरण से सदा के लिये मुक्त हो जाऊँ तो सदाबहार बसंत. ...मुक्ति रमणी का शाश्वत-योग मिल सकता है।

सीता का मन-मानस मृत्युंजयी बनने के लिये जैसे तड़फ उठा।

राजप्रसाद उसका स्वागत करें, उससे पहले सीता मुखरित हुई-स्वामिन्! संसार में रमने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। भोगों की उम्र पूरी हुई। अब योग का जीवन जीना है। आप शीघ्र ही दीक्षा की अनुमति देकर मेरी भावना को साकार करें।

सीता का यह अप्रत्याशित प्रस्ताव राम के लिये वज्रापात से कम नहीं था। दीक्षा का निवेदन सुनकर वे इतने मोहाकुल-व्याकुल हुए कि चेतना लुप्त होने लगी। मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

थोड़ी देर बाद जब होश में आए तो अनुनय करने लगे-सीते! अभी क्या जरूरत है प्रव्रजित होने की। जीवन के पश्चिमकाल में साथ-साथ दीक्षा लेकर भव को सार्थक करेंगे।

सीता साश्चर्य बोली-वाह! आप या तो काल विजेता हैं अथवा केवलज्ञानी। अन्यथा करणीय को कल पर छोड़ने की बात कभी न कहते। फिर भोगों में कोई सुख नहीं है। अनन्तकाल तक भोगते रहेंगे, तब भी अतृप्त ही रहेंगे। शाश्वत तुष्टि....तृप्ति का मार्ग है-संयम।

सती सीता का महाभिनिष्क्रमण

आप शीघ्र ही मेरी भावना को आचरण में रूपान्तरित करने में योगदान दीजिये, मुझे दीक्षा के अतिरिक्त कुछ भी काम्य नहीं है।

सीता की दृढ़ मनोभावना ने राम को अनुमति देने के लिये बाध्य कर दिया।

मोहाकुल मानस खिन्न था पर अन्तर्मन प्रसन्न था।

राम की खिन्नता और प्रसन्नता की साक्षी में सीता संयम का हीरा पाकर अनमोल बन गयी। उसे मूर्त रूप देने में निमित्त बने जयभूषण मुनि।

राम के मन में चिरकाल से यह प्रश्न चक्कर लगा रहा था कि सीता का सतीत्व पवित्र, निष्कलंक और विशुद्ध होने पर भी उस पर दुश्चरित्रा का झूठा कलंक क्यों लगा? आज जयभूषण मुनि के ज्ञानालोक में अज्ञानता का कोहरा छंटता हुआ प्रतीत हुआ।

ज्ञानी गुरूवर के सामने प्रश्न रखने में देरी हो सकती है, समाधान पाने में नहीं।

वे अविलम्ब बोले-राजन्! इस दुनिया में हर ध्वनि प्रतिध्वनि पैदा करती है। बिना बीज के वृक्ष को कब अस्तित्व मिला है। यहाँ कार्य है तो कारण भी है।

पल दो पल ठहरकर मुनिवर ने साध्वी सीता पर नजर डाली और बोले-राजन्! पूर्व जन्म में सीता श्रीभूति पुरोहित की आत्मजा थी। वेगवती इसका नाम था। पूर्वसंचित संस्कारों के कारण निष्कारण वह मुनिजनों के प्रति द्वेष से कुढती... चिढती रहती थी।

एक दिन वह नगर से बाहर उद्यान में घुमने के लिये गयी। वहाँ सुदर्शन मुनि ध्यानस्थ थे। अनेक श्रद्धालु उनकी स्तवना कर रहे थे। वेगवती ईर्ष्याग्नि से भभक उठी और द्वेषवश बोली-अरे मुग्धजनों! तुम भी कितने भोले हो। अज्ञता

के कारण ही इस दुराचारी, मायावी को वन्दना-अभिनन्दना कर रहे हो। तुम क्या जानो इसकी महामाया और छल-प्रपंच को। मैंने कुछ देर पहले इसे एक युवती के साथ दुष्ट वांछा करते देखा है। इसका साधुत्व ढोंग है ढोंग।

लोगों ने सुना तो उनकी श्रद्धासिक्त भावनाएँ पलट गयी। वे थूँ....थूँ....करते हुए मुनि का तिरस्कार करने लगे। उनकी अवमानना करते हुए धिक्कारने लगे।

मुनि समता के साधक और क्षमाधर्म के उपासक थे। लोगों की अवगणना से उन्हें कोई पीड़ा न थी पर जैन धर्म की अप्रतिष्ठा के कारण दु:ख जरूर था। उन्होंने कायोत्सर्ग में ही प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक यह संकट-काल नहीं कटेगा, तब तक मैं न हिलूंगा, न चलूंगा, न बोलूंगा। तब तक अन्न-जल का भी त्याग रखूंगा ।

तत्क्षण प्रण की विद्युत् तरंगों ने शासनसेवी सुरों को आकृष्ट किया। रूष्ट एवं क्रुद्ध होकर उन्होंने वेगवती की वचन-सम्पदा छीन ली। बंद जुबान के कारण वेगवती छटपटाने लगी।

इस उपद्रव का कारण वह समझ गयी। वह शीघ्र ही मुनि चरणों में पहुँची। पुनः पुनः क्षमायाचना की। मुनि कटु वचनों से जब रूष्ट ही नहीं हुए थे तो अब क्षमादान का प्रश्न भी नादानी थी। हाँ ! वेगवती के पश्चात्ताप से प्रभावित होकर देवों ने विघ्न हर लिया। अनुग्रह कर वचन संपदा प्रदान की।

वेगवती ने मिथ्यादुष्कृत पूर्वक लोगों को हकीकत कही। उन्हें भी अपनी गलती का अहसास हुआ। वे मुनि चरणों में बैठकर प्रायश्चित्त के आँसू बहाने लगे। इस प्रसंग ने सीता को प्रतिक्षण जागरूक रहने की हितशिक्षा दी क्योंकि अज्ञान व मोहवश बांधे गये कर्म जीव को भोगने ही होते हैं।

उदयकाल में समता और बंधकाल में सावधानी का मंत्र जपती हुई कषायाग्नि को मंद कर सीता देवलोक में सीतेन्द्र नामक देव बनी। इस भव के बाद महाविदेह क्षेत्र में रावण के तीर्थंकर काल में गणधर बनेगी और सकल कर्म क्षय कर शाश्वत सिद्धि सम्पदा को उपलब्ध होगी।

महाप्रज्ञा का उद्बोधन

# महासती शिवा

- भूदेव! तेरी सम्पदा और सौन्दर्य तो क्या, साक्षात् सुरेन्द्र अपना स्वर्ग मेरे चरणों में रख दे तो भी मुझे अपने व्रत से विचलित नहीं कर सकेगा।
- मेरा धन...मेरा बल..मेरी सांसें और मेरी धड़कन मेरा शील है। उससे प्यारा मुझे न जीवन है, न तन है। यदि तूंने मेरे शील के साथ खिलवाड़ करने की कोशिश की तो व्यर्थ ही मारा जायेगा। यह तो एक ऐसी आग है, जो सब कुछ स्वाहा करके ही शान्त होती है।

# महासती शिवा

आँखों में जिसके सौन्दर्य को न समेट सके....कला और शिल्प जिसके कण-कण का प्राण बने हुए हैं....जिसका आध्यात्मिक और धार्मिक सौन्दर्य संतों के मन-मानस को आकर्षित करता है तो व्यवसायिक और सांस्कृतिक परिवेश गृहस्थों के मन में आदर पैदा करता है, ऐसी स्वर्ग-सी सुन्दर नगरी इसी भूमण्डल पर विख्यात है-नाम है उसका उज्जयिनी ! नीतिनिपुण महाराजा चण्डप्रद्योत की प्रशासनिक कुशलता के कारण कहीं किसी के मन में भय, आतंक अथवा अनिष्ट की कल्पना नहीं है।

महासती शिवा : शील व सौन्दर्य का संगम

सभी चैन की नींद सोते हैं....

आराम की जिन्दगी जीते हैं....

पर आज इसी नगर में चिहुँदिशि हाहाकार मचा हुआ है! महाभयंकर आग समुद्री मत्स्य की भाँति नगर को निगलने के लिये आगे बढ़ी चली आ रही है।

छोटे-बड़े, बाल-युवा-प्रौढ़-वृद्ध! क्या पुरूष....क्या महिलाएँ...! सभी के मुख से केवल और केवल बचाओ....बचाओ....की आर्त्तध्वनि निकल रही है पर कौन किसे बचाये! किसे दे दिलासा, जब खुद के ही प्राण दाँव पर लगे हुए हैं।

प्रशासन मण्डल भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ की भाँति सर्वाहारा अग्नि की

लपटों को देख रहा है। सब कुछ समझ से परे है कि आग कहाँ से उठी....क्यों उठी। सवेरे आँखें खुलते ही अपने आपको अनल की लपटों के बीच पाया है।

कोई भी प्रकाण्ड अग्निकाण्ड के इस रहस्य को अनावृत्त नहीं कर पाया। सारी कोशिशें विफल हुई तब एक ही शरण....एक ही त्राता उनके सामने था। अपने इष्टदेव के स्मरण से अभीष्ट सिद्ध हुआ। देववाणी हुई-यदि कोई पतिव्रता स्त्री कलश में जल भरकर वलयाकार अग्नि पर छिड़काव करे, तो ये भीषण ज्वालाएँ शान्त हो सकती हैं।

जल का कलश भर-भरकर नगर की महिलाएँ आयी, छिड़काव किया पर अग्नि प्रशान्त होने की अपेक्षा अधिक भभक उठी। राजघराने की महिलाएँ भी पहुँची पर काम नहीं बना। सभी अपने शील पर प्रश्न चिह्न अंकित करके प्रत्यावर्तित हो गयी। पूरा नगर जैसे निराशा के घोर अंधकार में डूब गया। क्या उज्जयिनी में शीलवंती स्त्री एक भी नहीं!

इतने में महारानी शिवा के कदम भीषण प्राणलेवा लपटों की ओर बढ़ चले। दासियों से उसने जल-कुंभ लाने का संकेत किया। अंजलि जलापूर्ण हो गयी। शिवा के होठों पर नवकार मंत्र के शब्दों की छाया छा गयी।

वह मन ही मन बोली-हे अग्नि देवता! मैंने स्वप्न में भी प्रद्योत के सिवाय किसी पुरूष की कामना नहीं की है। मन से, वचन से और काया से पतिव्रता हूँ। यदि मेरा शील स्फटिक की भांति पारदर्शी, गंगा की तरह पवित्र और सुमेरू की तरह अचल है तो मेरी अंजलि में रहे हुए जल का स्पर्श पाकर आप शान्त हो जाये। कहकर शिवा ने ज्योंहि जल का अनल पर छिड़काव किया!

आश्चर्य....चमत्कार....जादू.... !!!

प्रलयकाल की भाँति दहकती ज्वलाऐं कुछ पलों में प्रशान्त हो गयी।

पूरे नगर में हर्ष की लहर दौड़ गयी। लोगों की आँखें आनंद और आश्चर्य से चौड़ी हो गयी। 'महासती शिवा महारानी की जय हो।' इन नारों से अम्बर नाच उठा।

चण्डप्रद्योत ने महादेवी को बधाते हुए कहा-प्रिये! आज मेरे गौरव के मुकुट का मान बढ़ाकर तूं मेरे हृदय का हार बन गयी है। अपने निर्मल शील के शीतल जल के बल से अग्नि-मुख में प्रवेश करती उज्जयिनी को उबार करके तूं जीवनदात्री बन गयी है । निश्चित ही तेरा निश्छल समर्पण मेरे जीवन का वरदान है। अपने संदर्भ में श्लाघा सुनकर शिवा की आँखें झुक-सी गयी।

प्रद्योत और शिवा का वार्तालाप

शिवा ने कहा-प्राणनाथ! चमक को पाने के लिये कुंदन को कसौटी पर चढ़ना ही होता है। सविस्मय प्रद्योत ने कहा-देवी! तुम किस रहस्य की बात कर रही हो? तुम्हें भला कसौटी पर कसने की जरूरत क्या पड़ी? तुम्हारा शील सदा से निश्शंक और निर्दोष रहा है।

प्रत्युत्तर में शिवा ने कहा-हृदयेश्वर! आज मैं एक अकल्पित घटना को अनावृत्त कर रही हूँ, जिसकी कल्पना मुझे स्वप्न में भी नहीं थी और न आपको ऐसी कल्पना हो सकती है।

कल्पनातीत घटना? चण्डप्रद्योत के अचरज का ओर-छोर न रहा।

हाँ! उस घटना ने ही मुझे आज कसौटी पर कसा है। मैं आपकी दृष्टि में शील के संदर्भ में सदा से असंदिग्ध रही हूँ पर आज प्रकृति ने परीक्षा लेकर सम्पूर्ण लोक में मेरे शील को खरा सोना प्रमाणित कर दिया है।

– तुम जिस कल्पनातीत घटना को कह रही थी, वह घटना?

– तो सुनिये प्राणनाथ! फसल को यह कल्पना कब हो सकती है कि बाड़ ही उसे खा जायेगी। आपके क्षत्रियत्व के समक्ष मुझ पर भी कोई कुदृष्टि डाल सकता है अथवा घृणित प्रार्थना कर सकता है, यह मेरे बुद्धि–कौशल के बाहर की बात थी।

हुआ ऐसा कि आपके अन्तरंग और बाह्य सहयोगी महामात्य भूदेव का कार्यक्षेत्र बढ़ता जा रहा था। विश्वास के बल पर वे आपके चहेते बने हुए थे। एक दिन वे आपका निजी संदेश लेकर अन्तःपुर पहुँचे।

मेरे रूप और सौन्दर्य को देखकर उनका मन उनके हाथ में नहीं रहा । मन में विकार की तरंगें नृत्य करने लगी । उस समय वे भले ही शब्दों के द्वारा कुछ भी कह न पाये पर आँखों की भावभंगिमा से मैं उनकी दुष्ट मानसिकता का खरा–खरा अनुमान लगा चुकी थी । प्रणय की खुलकर बात करना उनको उचित नहीं लगा तो कुछ कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपना कुटिल–जटिल संदेश दासी के द्वारा मुझ तक पहुँचवाया।

मैंने दासी को साफ–साफ कह दिया–देख! उसकी बुद्धि को विकार का कीड़ा चाट चुका है पर तेरी भी मति मारी गयी है, जो उनकी घृणित प्रार्थना की दलाली करने आयी है। आगे से इस प्रकार की बात की तो

शिवा के रूपदर्शन से भूदेव का कुविचार

जबान खींचवा कर रख दूंगी। मेरा नाम शिवा है शिवाऽऽऽ!

मेरी लाल आँखें और तीखी प्रतिक्रिया देखकर वह पल दो पल में नौ दो ग्यारह हो गयी।

चण्डप्रद्योत का हाथ पुनः पुनः म्यान में तलवार खींचने का हो रहा था।

धीरज रखिये स्वामीनाथ! अभी तो बहुत सारी बात बाकी है। मेरा स्पष्ट इंकार सुनकर भी उसका मन स्थिर नहीं हुआ। भूदेव जब-तब वस्त्र-आभूषणों की मंजूषाएँ भिजवाने लगा पर उनका स्पर्श करना तो दूर, मैंने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

दासी द्वारा संदेश की प्राप्ति

इन्हीं दिनों किसी महत्त्वपूर्ण कारण से आपका अवंती से बाहर जाने का काम पड़ा। महामात्य येन केन प्रकारेण इस अवसर को चूकना नहीं चाहते थे। जाना तो उन्हें भी आपके ही साथ था पर भयंकर शिरोवेदना का बहाना बनाकर वे पीछे यहीं रह गये। आप उनकी विनम्रता और मधुरता के आवरण में छिपी कुटिलता को भांप नहीं सके ।

आगामी प्रभात आप सुरक्षादल के साथ लक्ष्य की ओर प्रस्थित हो गये । कुटिल वासना में अंधत्व को प्राप्त होकर भूदेव ने मुझे संदेश भिजवाया कि महामात्य आपके दर्शन को उपस्थित है ।

यह पल मेरे लिये परीक्षा का पल था ।

क्या कहूं, क्या न कहूं ।

स्वीकृति दूं या अस्वीकृत कर दूं ।

मैं एक अबला, कोमलांगी उस सबल और सक्षम पुरूष के सामने कैसे टिक पाऊँगी? कदाच् उसने मेरे शील को भ्रष्ट करने का जघन्य यत्न किया तो? पल दो पल के लिये आँखों के सामने अंधेरा छा गया। धरती....आकाश....सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकम्पित होता हुआ प्रतीत हुआ। तत्क्षण मैं नवकार की शरण में समर्पित हो गयी। जैसे एक चमत्कार घटित हुआ। नवकार की अदृश्य शक्तियों ने मेरे कमजोर मन को सकारात्मक ऊर्जा और अदम्य साहस से भर दिया।

मैंने संदेश कहलवाया-महामात्य सादर आमंत्रित है। उनकी पदचाप सुनकर एक बार मेरा हृदय जरूर अनिष्ट की आशंका से धड़का पर दूसरे ही पल मैंने नकारात्मक विचारों को त्यागकर आत्म-श्रद्धा को बल दिया।

मेरे सामने खड़े कामातुर भूदेव की आँखों में झांका तो वहाँ कामुकता के सिवाय कुछ भी नहीं था। संवाद का प्रारंभ करते हुए मैंने पूछा-आपका सिरदर्द इतना जल्दी भला ठीक कैसे हो गया?

उसकी घृणित मानसिकता दार्शनिक अंदाज में अभिव्यक्त हुई-देवी! तुम्हारे सौन्दर्य-पान की ताकत के आगे शिरोवेदना तो क्या, मृत्यु भी टल जाती है।

मैं कड़क अंदाज में मुखर हुई-भूदेव! जरा अपनी जबान को लगाम दो! शायद तुम यह भूल रहे हो कि तुम किसके साथ वार्तालाप कर रहे हो?

तुम नहीं जानते कि पति के सामने मासूम-भोली हिरणी बनने वाली नारी समय आने पर सिंहनी की तरह दहाड़ भी सकती है!

मैं चाहूँ तो हो-हल्ला मचाकर तुम्हें पलभर में सलाखों के पीछे डलवा सकती हूँ पर मैं नहीं चाहती कि तुम्हारी

निष्कलंक कीर्ति पर कोई काला धब्बा लगे। मेरा कथन पूरा हुआ कि वह फिर से भंवरे की भाँति मेरे सौन्दर्य पर मण्डराता हुआ बोला–देख प्रिये! यों जिद्द या आग्रह पर अकड़ना अच्छी बात नहीं है! तूं एक बार हाँ करके तो देख, यह दास तुम्हारा एहसानमंद होकर जीवन भर तुम्हारी सेवा करेगा। प्राणों के कण–कण को....सांसों के क्षण–क्षण को तुम पर कुर्बान कर देगा। तेरा....

भूदेवऽऽऽ! तूं अपनी सारी हदों को पार कर रहा है। ऐसी थोथी बातों से मेरा समय खराब मत कर! फिर यह भी ध्यान रखना कि मैं कोई सामान्य नारी नहीं हूँ, जो तेरे इशारों पर कठपुतली की तरह नृत्य करने लग जाऊँ। तेरी सम्पदा और सौन्दर्य तो क्या, साक्षात् सुरेन्द्र अपना स्वर्ग और सारी सम्पदा मेरे चरणों में रख दे तो भी मुझे अपने व्रत से नहीं डिगा सकेगा।

मेरा धन....मेरा जीवन और मेरी धड़कन मेरा शील है। उससे प्यारा मुझे न जीवन है, न तन है। और तूंने यदि मेरे शील के साथ खिलवाड़ करने की कोशिश की तो व्यर्थ ही मारा जायेगा। यह तो एक ऐसी आग है, जो सब कुछ स्वाहा करके ही शान्त होती है।

मेरी बात ध्यान से सुन! यदि तुझे अपने प्राणों का मोह हैं तो परिणाम को याद कर! इस भव में बदनामी, धिक्कार, तिरस्कार और अपकीर्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलेगा और परभव में नरक में जालिम दुःख, तिर्यंच गति में इन्द्रिय छेद, नपुंसकत्व, कुष्ठ–भगंदर रोगों से तेरी काया छलनी–छलनी हो जायेगी! फिर बैठा पछताएगा पर हाथ कुछ भी नहीं आएगा। मेरी धमकियों ने वहीं काम किया, जो काम उन्मार्गगामी अश्व के लिये चाबुक करता है।

मेरे कक्ष से इस प्रकार विदा हुआ कि फिर इधर झांकने तक की हिम्मत न की।

तीन दिन की सुखद यात्रा करके आप लौट चुके थे, तब वह भयंकर ज्वर से पीड़ित था, उसकी आँखें भीतर धंस गयी थी, यह आपको अच्छी तरह याद होगा। अपने विश्वस्त व्यक्ति का यों अचानक ज्वर से पीड़ित होना आपके लिये दुःखद था।

इस ज्वर का कारण शारीरिक पीड़ा नहीं, आन्तरिक-मानसिक व्याधि थी। उसके मन में डर पैठ गया था कि उसके जीवन का यह कृष्ण पक्ष कहीं आपके समक्ष उद्घाटित न हो जाए!

दूसरे ही दिन स्वस्थता के समाचार लेने के लिये आप भूदेव के गृहाँगन में पहुँचे। मैं भी आपकी छाया की भाँति आपके साथ थी । आपने ज्वर का कारण पूछा पर वह टाल गया । मेरी निगाहें उस पर बराबर लगी हुई थी । जैसे ही उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ी, उसकी अन्तर्व्यथा अभिव्यक्त हो गयी । ग्लानि का भाव नयनों में उभर आया । आँखों ही आँखों में अपने कृत-अपराध का पश्चात्ताप करते हुए उसने क्षमायाचना की । उसकी आँखें छलक आयी । मैंने उसे क्षमादान का संकेत किया और आपके साथ मैं लौट आयी ।

भूल सुधार के साथ भूदेव के अपराध की शल्य-चिकित्सा हो गयी। भावमण्डल को क्रमशः शुद्ध-विशुद्ध करता हुआ वह स्वास्थ्य लाभ को प्राप्त हो गया ।

चण्डप्रद्योत ने कहा-वाह प्रिये! तुमने तो कमाल ही कर दिया । अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा और तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर न केवल बीड़ा उठाया अपित सफलता पूर्वक पार भी कर लिया । मुझे यदि एक भी ईशारा किया होता तो वह आज सांसें नहीं ले रहा होता। वास्तव में तेरी शील-श्रद्धा अपूर्व और अद्भुत है । तेरी अभिनंदना में यदि सांसों के फूल बिछा दूं तो भी कमतर ही होंगे।

अगले ही पल वार्तालाप को नया मोड़ देती हुई शिवा बोली-प्राणनाथ ! इन दिव्य पलों की स्मृति मेरे हृदय-कोष में सर्वदा-सर्वथा अक्षुण्ण और अमिट रहे, इस हेतु मैं आपसे एक वरदान मांगना चाहती हूँ ।

कहो देवी ! तूं जो भी मांगेगी, तेरी सेवा में समर्पित हो जाएगा!

देव ! यह आपकी अतिरिक्त कृपा है । हमारी धरती का कण-कण कुछ ही दिनों के बाद हमारे परमाराध्य श्रमण भगवंत महावीर की चरण रज से पुनीत आभा को प्राप्त होने वाला है ।

लगेगी उपदेश की झड़ी ! जलेंगे समर्पण के दीप ! खिलेगी हृदय की वल्लरी ! बहेगी सुधा की पावन धारा !!

मैं भी उपदेश-सुधा में स्नात होकर भव-भव के कालुष्य का विसर्जन करना चाहती हूँ। समर्पण के दीप जलाकर निर्वाण-ज्याति में विलीन होना चाहती हूँ। इस मंगल बेला में आपकी स्नेहिल अनुज्ञा परमावश्यक है।

प्रद्योत की आँखें अश्रुओं से छलक उठी !

स्नेह के मोती झर-झर बिखरने लगे।

निश्चय ही शिवा ने परम शिव महावीर की दिशा में अपना कदम बढ़ाकर जीवन को कृतकृत्य कर लिया।

कसौटी का कुंदन

# महासती सुभद्रा

- अरे ए कुल कलंकिनी! तेरा क्या है? तेरे पास न तो इज्ज़त की नाक है, न शर्म की आँख है। पर हम सभी की मान-मर्यादा तो धूमिल कर ही दी।
- लोगों के कान कुएँ की ओर लगे हुए थे कि छलनी छपाक SSS की ध्वनि के साथ अब गिरी...अब गिरी पर अगले ही पल जल से भरी छलनी सबके सामने थी।
- द्वार हजारों लोगों के धक्के से भी टस से मस न हुए, जिनके सामने गंध मादन हाथी चींटी से भी कमजोर साबित हुए, वे द्वार सुभद्रा सती के सतीत्व पर अनुमति की मुहर लगाते हुए सहज ही खुल गए।

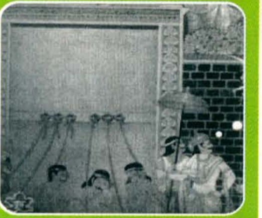

# महासती सुभद्रा

ओ सुनिये तो सही! यों उदासीनता की चद्दर तानकर सोना कोई अच्छी बात नहीं है। तत्त्वमालिनी ने जिनदास को पुकारते हुए कहा।

क्या बात है देवी! तुम्हारा इस प्रकार का वार्तालाप कभी नहीं सुना। आखिर तुम क्या कहना चाह रही हो? जिनदास ने अपने आश्चर्य को अभिव्यक्त करते हुए कहा।

देखिये! अपनी तनया सुभद्रा को। पूर्णमासी के चन्द्र की भाँति उसकी रूप राशि दिन ब दिन खिलती-निखरती जा रही है। उसके यौवन में उन्माद की उच्छृंखलता नहीं, मर्यादा की सुवास और अनुशासन का प्रकाश है।

जिनदास का मुखमण्डल गम्भीर होता जा रहा था।

तत्त्वमालिनी ने पूर्वोक्त कथन को और लम्बाते हुए कहा-आप राजकार्य में इतने व्यस्त हैं कि इस बात का भी बोध देना जरूरी हो गया है कि सुभद्रा यौवन की दहलीज पर पाँव रख चुकी है। शीघ्र ही उसके लिये योग्य वर का चयन क्यों नहीं कर लेते हो?

तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो। यद्यपि सुभद्रा के नये जीवन के लिये मेरे मन में विचार-विमर्श ऊर्मि जरूरी उठी पर उस पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाया।

फिर राजपुत्री के विवाह की तैयारियाँ चरम पर है तो उस पर ध्यान देना अत्यावश्यक हो गया है। मैं सोच रहा हूँ कि आगामी माह में जब इस जिम्मेदारी से मुक्त हो जाऊँगा, तब पूरी तरह सुभद्रा के लिये योग्य जीवन-साथी की तलाश शुरू कर दूंगा। आश्वासन की अभिव्यक्ति पाकर तत्त्वमालिनी का मन होने वाले दामाद की सौम्य कल्पनाओं में उड़ान भरने लगा।

जिनदास का नाम चंपापुरी में ख्याति प्राप्त है। वे प्रजा में प्रसिद्ध हैं, राजा के महामात्य होने के साथ-साथ प्रिय सखा भी है। नगर की फिजाओं में उनका सम्मानित स्थान है।

आज चंपापुरी में शरद-ऋतु का मेला लगा है । ठौर-ठौर दुकानें सज रही हैं। चौराहों पर रंगोली के रंग बिखर रहे हैं। चौखट दीप-प्रकाश से जगमग जगमग हो रहे हैं।

बाहर से आये बुद्धदास ने भी अपनी दुकान सुसज्ज की है। सखि समुदाय से घिरी सुभद्रा उसी दुकान पर सामान देख रही है।

बुद्धदास की दृष्टि ज्योंहि सुभद्रा के सौंदर्य से टकरायी, पल भर के लिये वह पलक झपकाना ही भूल गया। संयत और शालीन मनोवृत्ति के कारण दुकानदार के रूप में पेश आ पाया, अन्यथा वह भी संभव नहीं होता।

अपनी अमिट छाप छोड़कर सुभद्रा वहाँ से चली गयी पर बुद्धदास की बुद्धि में घर कर गयी। उसके मन....वर्तन और विचारों में एकमात्र सुभद्रा घूमने लगी। मन ही मन उसने उसे जीवन-साथी के रूप में चुन लिया पर उसे आघात तो तब लगा जब उसे पता चला कि सुभद्रा अर्हत् अनुयायी जिनदास की अंगजा है।

मैं ठहरा भगवान बुद्ध का अनुयायी।

जिनदास की सांस-सांस भगवान महावीर और जिनधर्म को समर्पित है, तब भला वह सुभद्रा की जीवन-डोर मेरे हाथों में क्यों थामेगा?

अब यदि अमावस्या और पूर्ण शशि का संगम हो तो सुभद्रा से मेरा मिलन संभव हो।

असंभव! कदापि नहीं होगा!

दो-चार दिन इन्हीं विचारों में घूमता मन इतना अशान्त हो गया कि नींद लेना ही दुष्कर हो गया।

आखिर अपने मन को समझाते हुए सुभद्रा की कामना को ही छोड़ देने में अपना हित समझा। चिन्तन की रोशनी से अपने हृदय को थामा और सुभद्रा को भूल जाने का संकल्प कर लिया।

उसके बाद सुभद्रा अनेक बार उसकी दृष्टि में उतरी। दो-चार बार अनदेखा करने में वह सफल भी हुआ पर मन मर्कट (बन्दर) से कम थोड़े ही ना है। वह पहले से अधिक उछल-कूद करने लगा।

मनोनिग्रह असंभव हो गया।

हृदय को मनाने में सीधी निराशा हाथ लगने लगी।

ओह! तो क्या करूँ?

मन का यह कैसा प्रवाह है, जिसे न रोका जा सके, न पकड़ा जा सके।

पर मुझे हताश नहीं होना है। समस्या जीवन का अभिन्न अंग है। उसके बिना बुद्धि की सच्ची कसौटी नहीं हो सकती। दु:ख तो आग है, तुम सोना हो या कागज?

ऐसा कौनसा जीवन है, जिसमें मुश्किलें न हो और ऐसी कौनसी मुश्किल है-जिसका कोई समाधान न हो! इन विचारों की खुराक ने बुद्धदास के आत्मविश्वास को इस कदर मजबूत बनाया कि संदेह के बादल क्षण मात्र में छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये।

आशा, विश्वास और चिंतन की दिव्य तरंगों ने उसे समस्या के भंवर से सहसा समाधान के तट पर लाकर रख दिया। मैं जिनधर्मी श्रावक न हुआ तो क्या हुआ? वैसा होने का ताना-बाना तो रच ही सकता हूँ।

दूसरे ही दिन उसकी जीवन-शैली बदल गयी । प्रात: जिनमंदिर दर्शन-पूजन-वंदन की मधुर क्रियाओं में बीत जाता। तत्पश्चात् गुरु भगवंतों की पर्युपासना, प्रवचन श्रवण आदि से मन को तरल-सरल बनाना होता।

कन्दमूल का निषेध!

रात्रिभोजन का त्याग!

प्रभु-गुरु की भक्ति!

तत्त्व-बोध का अभ्यास!

बुद्धदास ने एक ऐसा वर्तुल निर्मित किया कि किसी को संदेह की गंध भी न आ सके।

प्रतिदिन की चर्या से जिनदास बुद्धदास की तत्त्वनिष्ठा से प्रभावित हुए बिना न रहा।

उसे सपनों को साकार करने का खुला आकाश मिल गया। ओह! यह सुन्दर-शालीन व्यवहारी युवक सुभद्रा के लिये हर तरह से उपयुक्त है।

मैंने आज तक कितने ही युवकों को देखा पर कोई भी मन को भाया नहीं। किसी का कद-वर्ण उपयुक्त था पर कुल-शील का प्रश्न खड़ा हो गया। कोई धर्म-कर्म से उत्तम था पर उम्र के लिहाज से नहीं जंचा । यह नवयुवक हर दृष्टि से योग्य है, स्वभाव, शील और धर्म से।

जिनदास की आन्तरिक परिणति मुख से स्वतः मुखर हो रही थी। बुद्धदास जानता हुआ भी सर्वथा अनभिज्ञ होने का ढोंग रच रहा था।

एक दिन घटनाक्रम यों घटा....

प्रवचन की पूर्णता के उपरान्त आवस्सहिपूर्वक जब बुद्धदास बाहर आया तो जिनदास को अपने सामने खड़ा पाया।

बुद्धदास! मैं तुम्हें पिछले कितने दिनों से मेरे घर पर आमंत्रित कर रहा हूँ पर तुम एक दिन भी न आए। आज तेरी ननुनच चलने वाली नहीं है ।

मैं दृढ़ निश्चय करके आया हूँ कि आज साधर्मिक भक्ति का मुझे पूरा-पूरा लाभ उठाना है।

नहीं चाचाजी! आज तो आना मुश्किल है। नौकर भी छुट्टी पर है...। दुकान को....बीच में ही बात को काटता हुआ जिनदास बोला-आज तेरी एक भी चलने वाली नहीं। यदि तूंने सीधे सीधे बात न मानी तो जबरन पकड़ करके ले जाऊंगा, फिर तुम रूष्ट मत होना।

अन्ततः बुद्धदास जिनदास के साथ उसके घर की ओर विदा हुआ। लक्ष्य-संधान में सफलता की प्रसन्नता उसकी मूँछों और मुस्कान से छलक-छलक कर टपक रही थी तथापि अपनी धीर-गम्भीर भावमुद्रा में छिपाने का अतिशय प्रयत्न कर रहा था।

भोजन से निवृत्त हुए तब जिनदास ने बुद्धदास से कहा-आत्मीय बुद्धदास! मैं तेरी तत्त्वनिष्ठा, जीवन-चर्या और सुन्दर स्वभाव से अत्यन्त प्रमुदित और प्रभावित हुआ हूँ । फिर रहस्यपूर्ण शब्दावली में कहा-मेरे पास एक रत्न है.... अनमोल रत्न ! लम्बे समय से मैं इस चिन्ता में हूँ कि वह बेशकीमती रत्न किसे समर्पित करूँ ?

नगर-नगर....डगर-डगर घूमा-फिरा पर कहीं भी योग्य पात्र नहीं मिला । मेरी वह तलाश आज तुझ पर आकर पूर्ण हो गयी है ।

बुद्धदास मना कर पाता उससे पहले ही जिनदास बोले-वह रत्न है मेरी लाडली, संस्कार, सौन्दर्य और शील की सुन्दर प्रतिमा सुपुत्री सुभद्रा ।

बुद्धदास सर्वथा मौन था। उसका मनोरथ आज मनुहार के साथ साकार हो रहा था। आनंद उसके रोम-रोम से टपक रहा था।

निःशब्द वातावरण....जिनदास की भावमुद्रा....बुद्धदास की मौन स्वीकृति। दोनों पक्षों में खुशी की लहर छा गयी।

समय की सुई तेजी से घूम रही थी और देखते देखते वह दिन भी आ गया, जब सुभद्रा को नये घर में प्रवेश करना था।

विदायी की घड़ी परीक्षा की घड़ी थी।

जिनदास ने सुभद्रा के माथे पर वात्सल्यपूर्ण हाथ फेरते हुए कहा-पुत्री! आज से तुझ पर दोहरी जिम्मेदारी आ पड़ी है। दो घरों का गौरव तुझे निभाना है। आज तक माँ की ममता के आंचल में तूंने जो संस्कार पाये हैं, एक-एक करके वे तुझे आचरण के मंदिर में प्रतिष्ठित करने हैं। तेरा निर्मल शील और शालीन व्यवहार तुझे प्रतिष्ठा देगा! कहते-कहते

जिनदास का कण्ठ अवरूद्ध होने लगा। सीने को कठोर करके बोला-सुभद्रे! बेटी परायी अमानत होती है। चाहे-अनचाहे इस सामाजिक दस्तूर को हर माँ-बाप को निभाना ही होता है, चाहे खून के आँसू क्यों न बहाने पड़े।.... जिनदास आगे कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं था। उसका स्नेह-ममत्व आँखों से अश्रुधार के द्वारा प्रवाहित होने लगा।

माँ ने मंगल आशीर्वाद देते हुए कहा-बेटी! नये लोगों के बीच जा रही हो पर उन्हें पराया मत समझना। अपने सुन्दर व्यवहार से सभी का मन जीत लेना। बड़ों की आज्ञा में जीना और अपने अर्हत् प्रणीत धर्म के संस्कारों को भूलना नहीं। शील को जीवन का सर्वोच्च धन मानना। शील से बड़ा कोई कुल और बल नहीं। शील जैसा महाशैल और उच्च शिखर नहीं। गंभीरता की ओढ़नी अब वात्सल्य की धारा में भीगने लगी। भीगी आँखों से माँ ने सीख दी।

सुभद्रा बुद्धदास के संग विदा हुई।

शालीन, कुलीन और विनम्र सुभद्रा को बहु के रूप में पाकर धर्मदास और सुजाता खुशी को समेट नहीं पा रहे थे।

मंगल द्रव्य....मंगल आशीर्वादों और भविष्य की मंगल कामनाओं से सुभद्रा का मन मधुवन की भाँति खिल गया।

रस्मो-रिवाज से सुभद्रा जब पहली बार मायके लौटी तो जैसे घर का कोना-कोना पायल की मधुर झंकार से झंकृत हो उठा।

जिनदास और तत्त्वमालिनी ने सहजतया प्रश्न किया-बेटी! कैसा लगा नया परिवार....नये लोग....और उनका व्यवहार!

....अच्छा लगा। सभी मुझसे प्रेम करते हैं पर जैनत्व के संस्कारों की अपेक्षा बुद्धत्व की बोधि का ही अधिक अहसास हुआ। पूर्णतया तो अभी जान नहीं पायी हूँ।

जिनदास बोले-ओह! नियति भी कैसे-कैसे खेल रचती है। परखकर लिया गया सोना भी पीतल निकल जाता है। खैर....हुआ सो हुआ। जो होना होगा, वही होगा। पर तूं अपने संस्कारों से चलित मत होना।

सांस-सांस में जैनत्वम् को जीना!

पल-पल नवकार को जपना!

अन्तिम श्वास तक भी अपनी आस्था को अचल रखना।

मायके से विदा होते-होते सुभद्रा ने इतना ही कहा-आप मेरी ओर से बिल्कुल से निश्चिंत रहें। मेरे धार्मिक संस्कारों पर कोई आपत्ति आएगी तो भी हँसते-हँसते झेल लूँगी। किसी भी स्थिति में धर्म-चन्द्र पर प्रलोभन अथवा भय की काली छाया पड़ने नहीं दूंगी।

जिनदास और तत्त्वमालिनी के चिन्तित चित्त को गहरा आश्वासन मिला।

बसंतपुर से विदा होकर सुभद्रा चंपा पहुँच गयी। कुछ ही दिनों के बाद घर में जब बुद्ध जयंती की तैयारियाँ देखी तो समझ गयी-यहाँ बौद्ध धर्म के प्रति आस्था का वातावरण है, इतना ही नहीं, पतिदेव भी

उसमें पूरी तरह रच-पच गये हैं। वह भाग्य को कोसकर भी क्या कर लेती। हाँ ! यह बात जरूर सन्तोषप्रद थी कि उसकी सामायिक, प्रतिक्रमण, पूजा आदि निजी धर्म-क्रियाओं से किसी को कोई शिकायत नहीं थी।

कुछ ही दिनों में गृहकार्य के भार को अपने कंधों पर ले लिया और देखते-देखते चार महिने की अवधि पूर्ण हो गयी ।

सुभद्रा के प्रति सुजाता का व्यवहार यद्यपि अत्यन्त मृदु और माधुर्य से परिपूर्ण था पर मानसिक तौर पर वह उससे रूष्ट भी थी। जैसे जैसे अवधि खिसकती जा रही थी, सुजाता मन ही मन तनाव, रूष्टता और आक्रोश से भरती जा रही थी। धीरे-धीरे स्थिति जब असह्य हो गयी तब सुभद्रा को आड़े हाथों लेती हुई बोली-सुभद्रा! मैं तो समझती थी कि तूं चतुर और व्यवहारिक है पर तुझमें इतनी भी अक्ल कहाँ कि छह महिने में भी समझ सके।

देख! कान खोलकर मेरी बात सुन! इस घर में केवल और केवल बौद्ध धर्म की उपासना चलेगी। तुझे जो भी पूजा, आस्था करनी है, वह सब बौद्ध सिद्धान्त के अनुसार होगी। अपने पीहर के धर्म को छोड़ और ससुराल का धर्म अंगीकार कर!

माँजी! आप भी कैसी बातें करती हैं। धर्म न तो ससुराल का होता है, न पीहर का, वह तो अन्तर आत्मा की परिणति है। यह कोई आभूषण या वस्त्र नहीं कि आज पहना और कल उतार दिया। मेरे प्राणों में जैनत्व के प्रति श्रद्धा है, मुझे उसी में आनंद आता है, मेरे ख्याल से आपको इसमें किसी भी प्रकार की परेशानी नहीं होनी चाहिये। सुभद्रा के दृढ़ता भरे इंकार से सुजाता बौखला गयी।

अरे ए हठीली छोकरी ! सासु के साथ जबान लड़ाते हुए शर्म नहीं आती? क्या तेरे माँ-बाप ने इतनी भी शिक्षा नहीं दी कि बड़ों के साथ किस प्रकार विनय और व्यवहार रखें।

सुभद्रा जली-कटी सारी बातें जहर की भाँति पीती रही पर उफ् तक नहीं किया । वह अच्छी तरह समझ रही थी कि ज़ब तक पतिदेव इस संदर्भ में कोई चर्चा नहीं करते हैं, तब तक डरने की कोई जरूरत नहीं है।

प्रतिदिन की भाँति उसकी उपासना का क्रम जारी रहा और सुजाता मन ही मन जलती-भुनती! उसने प्रतिशोध का दूसरा मार्ग खोजा-बात-बात पर सुभद्रा को जलील करना, व्यंग्य कसना, लोगों में निंदा करना, नुक्ताचीनी करना, अपशब्द कहना जैसे उसका रोज का धंधा हो गया। इतना कुछ होने पर भी सुभद्रा की ओर से कोई कषाय या प्रतिक्रिया नहीं थी। समता में जीने की जैसे आदत-सी बन गयी।

कोई रास्ता नहीं मिला तो सुजाता ने बुद्धदास को सुभद्रा के प्रति भड़काना शुरू किया। रोज-रोज की बातें सुनकर सुजाता के षड्यंत्र-चक्रव्यूह में फंसना ही था।

एक दिन उसने मौका देखकर सुभद्रा से कहा-सुभद्रे! मैं यह क्या सुन रहा हूँ कि तुम मांजी का अपमान करती हो। यदि उनके कहे अनुसार बौद्ध पद्धति से धर्म-उपासना कर लो तो कौन सी नरक में चली जाओगी? बुद्धदास ने फटकार लगाते हुए कहा।

आप ये क्या कर रहे हैं? जैनी....तत्त्वज्ञ श्रावक होकर आपके मुँह से बौद्ध धर्म की आराधना....। बीच में ही बुद्धदास बोला-मैं न तो जैनी हूँ, न उस पर मेरी आस्था है, थी या होगी।

तो फिर बसंतपुर में जो बातें की थी! वे सब....वे सब झूठी थी, भ्रम और जालसाजी थी?

मैं जैनी नहीं, बौद्ध हूँ। बसंतपुर में मैंने केवल और केवल अभिनय किया था, वह भी सिर्फ तुम्हें पाने के लिये। आज मेरी आशा पूर्ण हो चुकी है अतः ....

इसका मतलब हुआ कि आपका आचरण केवल ढोंग, दिखावा और छलावा ही था। सुभद्रा ने प्रति प्रश्न किया।

बिल्कुल! इसमें कोई शक नहीं। गलती तुम्हारे बाप से हुई कि वे मुझे अच्छी तरह पहचान नहीं पाए और मेरे मुखौटे को ही मुख समझ लिया।

ठीक है, हुआ सो हुआ। मैं एक संस्कारी नारी हूँ अतः न तो तलाक दूंगी, न किसी प्रकार से परेशान करूंगी। अन्तिम श्वास तक मेरे स्वामी आप ही रहेंगे। सुभद्रा सरलता से मुखर हुई।

इसका अर्थ हुआ कि तूं मेरे कहे बौद्ध पद्धति से धर्म-आराधना करेगी।

धर्म उपासना स्वयं की श्रद्धा से जुड़ा प्रश्न है। मैं जिस उत्तरदायित्व और इंगित पर चलने की बात कर रही हूँ, वह सामाजिक क्षेत्र से सम्बन्धित है। जहाँ अन्तरात्मा और आत्म श्रद्धा की फसल लहलहाती है, वहाँ परिवार और समाज के सारे बंधन तिरोहित हो जाते हैं। वहाँ न तो सास-बहु का रिश्ता बचता है, न पति-पत्नी की पारस्परिक नियमावलियाँ। धर्म की उपासना वैयक्तिक श्रद्धा के अनुसार होती है। वह थोपी नहीं जाती, अपितु प्राणों के कतरे-कतरे से अपने आप प्रकट होती है।

संवाद का उपसंहार करती हुई सुभद्रा बोली-जब मुझे आपकी बौद्ध धर्म-साधना पद्धति से कोई एतराज नहीं है तो मेरी जैन आराधना से आपको भी एतराज नहीं होना चाहिये । आप अपनी श्रद्धानुसार धर्म-कर्म करें, मैं अपनी श्रद्धानुसार करूं। फिर जिस दिन मेरी श्वासों में बौद्ध धर्म के प्रति कोई आस्था की सुगंध भर जाएगी, उस दिन से आपको कहने की कोई जरूरत नहीं रहेगी, मेरा आचार स्वतः उस प्रकार ढल-बदल जाएगा।

कितना लंबा भाषण देना जानती है तूं। तेरी इस बकवास को सुनने के लिये मेरे पास समय नहीं है। यदि तुझे मेरी बात मान्य नहीं है तो कान खोलकर सुन ले-आज से तेरा-मेरा रिश्ता समाप्त। पग पछाड़ता हुआ बुद्धदास कक्ष से बाहर निकला।

मुनिवर का गोचरी हेतु आगमन

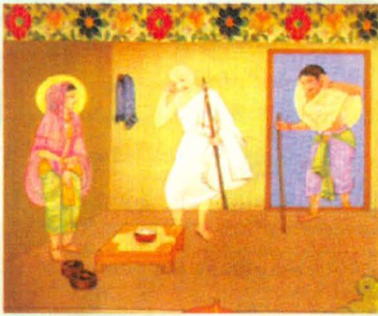

सुभद्रा पर तो जैसे बिजली गिरी। तीव्र वज्रापात हुआ। मूर्च्छा आते-आते वह संभल गयी। जैसे अंधेरे में प्रकाश-किरण मिली-यह सब मेरे पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है। पर कोई चिन्ता नहीं। सारी दुनिया रूठ जाये तो भी जब तक धर्म की शरण है, तब तक मेरी जीत है। इस घटना के उपरान्त सुभद्रा गृहकार्यों के अतिरिक्त सारा समय जाप में बीताने लगी।

इधर सुजाता ने बुद्धदास के मुख से सुभद्रा के हठाग्र की बात सुनी तो बात-बात पर

पीड़ित करने लगी। मानवीयता की हदों से बहुत दूर पहुँच गयी। जैसे स्नेह का स्रोत सर्वथा शुष्क न हो गया हो वैसे अपशब्दों की बरसात, कटुतापूर्ण व्यवहार से भी बहुत नीचे उतर आयी। यद्यपि सुभद्रा को संस्कारों की पाठशाला में समता, सहिष्णुता की शिक्षा मिली थी अतः वह सहना जानती थी मुँह से एक भी जवाब दिये बिना और शिकायत किये बिना। पर सहने की भी एक हद होती है। उन सीमाओं को पार करके जब सुजाता प्रताड़ित करने लगी तो उसका मन क्षुब्ध हो उठा। आखिर उसकी भी संवेदनाएँ थी अतः मन में सूक्ष्म आवेश भी उभरा पर भाषा में कहीं कोई कटाक्ष या असहिष्णुता को प्रकट नहीं होने दिया।

उसकी इस क्षमा और सहिष्णुता ने पानी बनकर क्रोधाग्नि को बुझाने का नहीं अपितु पेट्रोल बनकर और अधिक बढ़ाने का काम किया। इससे दुर्भावनाएँ यहाँ तक बढ़ी कि सुभद्रा सुजाता के आँखों में कांटें की भाँति चुभने लगी। वह किसी तरह उसे लांछित करके घर से निष्कासित करने का अवसर खोजने लगी। और एक दिन....।

पधारिये! पधारिये! गुरुवर! मेरा आँगन आज पवित्र हो गया। जैन मुनि को आहार-गवैषणा के लिये आये देखकर सुभद्रा का मुख-कमल खिल उठा।

मुनीन्द्र को भिक्षा देते हुए सुभद्रा ने देखा कि मुनि की एक आँख सूजी हुई और लाल है। उससे झर-झर पानी बह रहा है। लगता है आँख में रज कण गिर गया है। पर कुछ भी कहते क्यों नहीं? तुरन्त विचार आया-ओह! मुनिवर जिनकल्पी हैं अतः चिकित्सा के लिये वे कैसे कह सकते हैं?

ओह! इतनी पीड़ा और वेदना के क्षणों में कितनी समता! अद्‌भुत है इनकी सहिष्णुता! धन्य है इनकी समत्व, निजत्व और मुनित्व की साधना को! सुभद्रा भावधारा में बही तो ऐसी बही कि भान भूला बैठी। उसका मुख मुनि-मुख के निकट पहुँचा और उनकी आँख में अपनी जीभ घूमाकर कण को बाहर खींच लिया । इस प्रसंग में उसके माथे की बिन्दियाँ मुनि मुख पर चिपक गयी । इस सारे घटनाक्रम में कहीं कोई अशिष्ट-अभद्र मनोकामना नहीं थी पर दोष तो था खिड़की से देख रही सुजाता की आँखों में ।

वह बात का बतंगड़ बनाती हुई दौड़ी दौड़ी आयी–अरे ए शीलभ्रष्ट मुंड! क्या तुझे तेरी मर्यादा का बोध नहीं रहा ! तुझे जब ये रंगरेलियाँ ही मनानी थी तो भला साधु वेश को बदनाम क्यों किया?

और ये मायाविनी ! तेरे साथ भोगों का आनंद लूटती है और दुनिया में शील की देवी बन बैठी है ।

अरे दुराचारिणी! तुझे इस कुल की प्रतिष्ठा का ख्याल था कि नहीं? जब ये सारे किस्से रचाने थे तो मेरे घर में बहु बनकर आयी ही क्यों?

जब मुनि गन्तव्य की ओर बढ़ने लगे तो दरवाजे के बीच खड़ी होकर वह अंटशंट बकने लगी–ए ढोंगी! क्या तेरी जीभ कट गयी है या सुनायी नहीं देता जो मेरे प्रश्नों पर चुप्पी साधकर बैठा है। मुनि मौनपूर्वक अन्य द्वार से गन्तव्य की ओर बढ़ गये।

अरे ढोंगी! जा रहा है तो इस चुड़ैल को भी साथ लेकर जा। मुनि मौन थे। प्रतिवाद किये बिना वे चले जा रहे थे।

सुजाता का क्रोध अपशब्दों के रूप में पिघल–पिघल कर बाहर आ रहा था। आस–पास के नहीं, पूरे मोहल्ले के लोग आकर जमा हो गये।

सुजाता लोगों के बीच सुभद्रा पर उफन पड़ी–अरे ए कुल कलंकिनी! तेरा क्या है? तेरे पास न तो इज्जत की नाक है, न शर्म की आँख है पर हम सभी की नाक तो कटवा ही दी। आज हमारी आँखें झुक गयी।

सकल जनसमुदाय सुभद्रा पर थूं....थूं....करने लगा। अरे! हम तो इसे धर्म और शील की मूरत मानते थे पर ये भी कैसी निकली! धिक्कार है इसके जीवन को। शील लूटाकर भी यह जिंदा खड़ी है।

और उस साधु को देखो! वह भी व्याभिचारी। पूरे जैन धर्म को बदनाम कर दिया।

सुभद्रा अच्छी तरह समझ रही थी कि प्रतिवाद करने का कोई अर्थ नहीं है। वह मौनपूर्वक अपने कक्ष की ओर बढ़ गयी।

साधु और सुभद्रा की यह बात हवा की भाँति कुछ पलों में सारे शहर में फैल गयी।

सुभद्रा की आँखों में नींद कहाँ थी? अपनी बदनामी का उसके मन में खेद नहीं था। पीड़ा तो इस बात की थी कि मेरे कारण मुनिश्री का अपयश हुआ।

ओह! ये क्या हुआ? ये अपयश कैसे हो गया? मैंने तो तनिक भी नहीं चाहा था। पर दोष भी तो मेरा ही है। मुझे यों भाव-आवेग में नहीं बहना चाहिये था। मैं अव्यवहारिक बन बैठी और मुनि कलंकित हो गये।

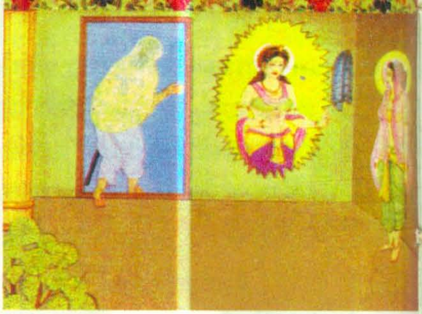

देवी का वरदान

मन की व्यथा गंगा-यमुना बनकर आँखों से चौधार बहने लगी। अन्तर्व्यथा के इन्हीं पलों में उसने संकल्प किया कि कुंदन की भाँति परम शुद्ध मुनिश्री पर लगा यह लांछन जब तक नहीं हटेगा, तब तक जल और अन्न, दोनों ही मेरे लिये त्याज्य है। इसी संकल्प के साथ वह नवकार मंत्र की उपासना में स्थित हो गयी।

बुद्धदास ने लोगों से काफी बातें सुन ली थी। उसका मन ज्वालामुखी की भाँति आग उगलने के लिये तैयार था। इस आग में घी डालने का काम सुजाता ने किया। शीघ्र ही वह सुभद्रा के कक्ष में पहुँचा-ए दुष्टा! तेरा तो मुँह देखना ही पाप है। अपनी कलमुँही सूरत लेकर उस व्याभिचारी के साथ ही क्यों नहीं चली गयी?

चल, निकल जा इस घर से! तेरे इस ढोंग का मुझ पर कोई असर नहीं होने वाला है। अब तो एक मिनट भी इस घर में ठहरने नहीं दूंगा। सुभद्रा का हाथ पकड़कर बुद्धदास खींचने लगा पर वह सर्वथा मौन थी। जब बुद्धदास का मन थोड़ा हल्का हो गया, तब वह स्वयं कक्ष से बाहर चला गया।

पहला दिन बीता....दूसरा और तीसरा दिन भी बीता। सुभद्रा अविराम नमस्कार मंत्र की साधना में संलग्न थी। उसकी हर सांस में श्रद्धा की सुवास थी। पिछले तीन दिनों में उसने न तो अन्न का एक भी दाना लिया, न एक घूंट भी पानी पीया। परिजनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा पर अधिष्ठायिका देवी प्रभावित हुए बिना नहीं रही।

श्रद्धा की विद्युत् तरंगों ने आसन को प्रकंपित किया। तत्काल वह सुभद्रा के सम्मुख प्रकट होकर बोली–सुभद्रे! निश्चित ही तुझ पर बहुत बड़ा संकट आया है। तूं कहे तो उनकी जीवन लीला का अन्त कर दूं।

नहीं माँ ! इस पूरी घटना में मैं उन्हें कत्तई उत्तरदायी नहीं ठहराती । यह सब मेरे पूर्वकृत पाप कर्मों का विपाकोदय है । फिर जैन धर्म की करूणा ने मुझे प्राणी मात्र के प्रति मैत्री का पाठ पढ़ाया है।

मेरा शील लांछित हुआ, इस बात से भी ज्यादा दु:ख निर्दोष मुनिश्री के कलंकित होने का है। सारे नगर में जैन धर्म व जैन मुनि की हीलना–निंदा अपमान हो रहा है। आप कुछ ऐसा कीजिये कि किसी के प्राणों की हानि भी न हो और यह कलंक भी धुल जाये।

'तथास्तु' कहती हुई देवी अन्तर्धान हो गयी। सहस्रगुणित आस्था से सुभद्रा पुनः अपने जाप में उपस्थित हो गयी।

अगले ही प्रभात....! एक आश्चर्यकारी घटना घटित हो गयी।

चंपानगरी के द्वार खोलने के लिये सुरक्षाकर्मी उद्यत हुए पर दरवाजे खुले नहीं। अरे! खुलने की बात तो दूर, टस से मस तक नहीं हुए। लाख प्रयत्न करने पर भी जब सफलता हाथ नहीं लगी तो निराशा ने संदेश बनकर महाराजा को वहाँ उपस्थित होने के लिये मजबूर कर दिया।

सम्राट् दौड़े–दौड़े पहुँचे।

नगरीय व्यवस्था अस्त–व्यस्त होने लगी। हजारों पौरजन नगर–द्वार के इर्द–गिर्द जमा हो गये। उन्होंने मिलकर धक्का लगाया पर चींटी से भी कमजोर साबित हुए। हार मानकर उन्होंने हाथ जोड़ लिये ।

राजा ने आदेश दिया–जाओ। हस्तिशाला से शीघ्र ही दो मजबूत गंधमादन हस्ति ले आओ।

निराश आँखों में विश्वास के दीये फिर जल उठे।

मस्त चाल....मज़बूत भारी भरकम काया....! पर आश्चर्य! उन दो हाथियों से दरवाजा खुलना तो दूर की बात,

आधा सूत भी नहीं हिला।

राजाज्ञा से चतुर सैनिकों ने अनुपम शस्त्रों से दरवाजे को तोड़ने का यत्न किया पर तोड़ने की बात तो बहुत दूर, उसमें एक छोटा सा छिद्र भी नहीं कर पाएँ।

सम्पूर्ण नगर पर चिन्ता का घटाघोप अंधेरा छा गया। उपद्रव को उपायहीन जान राजा इष्टदेव के स्मरण में तल्लीन हो गया । एक प्रहर बीतने के साथ देव-वाणी हुई। नगर के चारों महाद्वारों का बंद होना दैवीय प्रकोप का परिणाम है।

कोई सती सावित्री कच्चे सूत के धागे से छलनी को बांधकर उसमें कुएँ से पानी निकालकर इन द्वारों पर छिड़के तो द्वार उद्घाटित हो सकते हैं।

एक आश्चर्य पर दूसरा महा-आश्चर्य!

सती-साध्वी-शील सम्पन्ना नारी....कच्चे सूत का धागा....छलनी और छिड़काव! क्या होगा? कैसे होगा? कब होगा? आँखों में प्रश्नों की आकृति उभर आयी।

नगर के पार्श्ववर्ती कुओं पर जैसे भीड़ जमा हो गयी। पणिहारियाँ तो नित्य-नियम के अनुसार पानी भरने यहाँ आया करती थी पर आज सेठानियाँ भी कच्चा सूत और छलनी लेकर कुओं की ओर दौड़ पड़ी।

किसी का तो धागा हाथ में लेते ही टूट गया तो किसी का छलनी से बांधते-बांधते ।

देव-प्रभाव से बंद द्वारों को खोलने का प्रयास

जिनका पुण्य-बल कुछ ज्यादा था, उन्होंने कुएँ में छलनी को उतार भी दिया पर बीच में ही टूट गया ।

यह इम्तिहान इससे भी आगे बढ़ा । किसी की छलनी में पानी ही नहीं भरा तो कुछ नारियों ने कुशलतापूर्वक पानी तक छलनी को पहुँचा दिया और पानी से लबालब भरी छलनी ऊपर आने लगी। उनके मुख पर अहं की छाया

लहराने लगी कि दूसरे ही पल कच्चा सूत टूटा और छलनी छपाक....की आवाज करती हुई नीचे गिर पड़ी।

पल भर में अहं छूमंतर हो गया....चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगी। दिन भी अब ढलने लगा। कुएँ की मुण्डेर पर छलनियों और कच्चे सूत का अम्बार लग गया।

सैकड़ों-हजारों नारियाँ अपना भाग्य आजमा चुकी थी! पर समस्या अभी भी समस्या के धरातल पर ही खड़ी थी!

सुभद्रा ने भी इस प्रसंग को सुना था।

नगर में ढोल पीट-पीट कर घोषणा हुई थी-

कोई सती....कच्चा सूत....छलनी....कुआँ....पानी....छिड़काव!!!

वह अच्छी तरह अनुमान लगा चुकी थी कि यह समस्या समस्या नहीं है अपितु मुनिश्री पर और मुझ पर लगे कलंक का समाधान है! उसकी आँखें चमक उठी। संकल्पनापूर्वक उसने अपने कदम सासु माँ के कक्ष की ओर बढ़ा दिये।

सुभद्रा के मुख से कुएँ पर जाकर छलनी पानी भरने की बात सुनकर सुजाता बिफर पड़ी-अरे दुष्टा! तुझमें जरा भी हया या संकोच है कि नहीं? कैसी निर्लज्ज बनकर कह रही है जैसे परसों कुछ भी हुआ ही न हो। पूरे नगर में तुझ पर थूं....थूं....हो रही है, तब तुझे कुएँ में जाकर डूब मरना चाहिये।

चुड़ैल! तूं अभी तक यों हि अकड़कर खड़ी है । कहीं तेरा पाप तुझे ही न ले डूबे। अरे! तुझे जाना है तो जा....जा...। आधी नाक तो परसों ही कटवा दी, आधी जो बची है, उसकी भी तुझे परवाह कहाँ है? मैंने तो कल ही उस दुष्ट साधु के साथ जाने का कहा था पर तूं गयी नहीं। मेरी छाती पर मूंग दलने के लिये बैठी रही। लगता है तेरी मौत ही तुझे बुला रही है अन्यथा कुकर्म करते हुए रंगें हाथों पकड़े जाने पर भी कुएँ पर जाने की जिद्द तेरे मन में कभी न आती ।

सुजाता नागिन की भाँति जहर उगलती जा रही थी पर सुभद्रा पूर्णतः संयत थी, समता से सहती रही।

जा....इस घर से निकल जा। मैं भी देखती हूँ कि तूं दुश्शीला, कुलटा होकर कैसे सतीत्व के बल पर नगर को

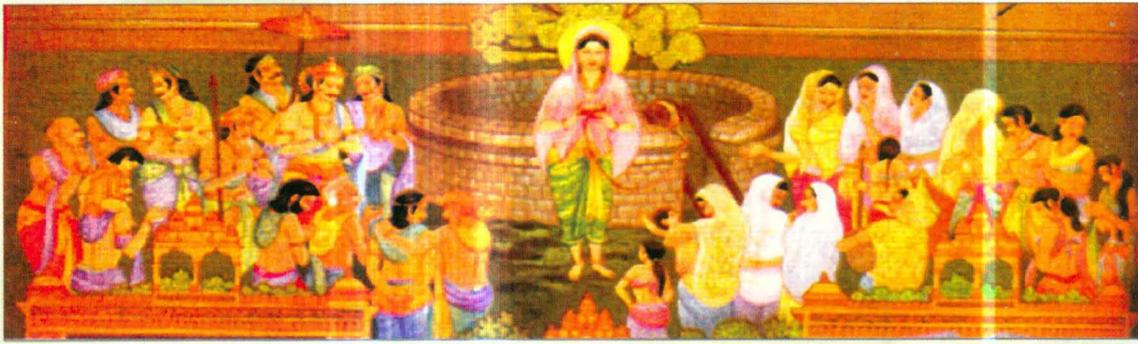

शील के प्रभाव से छलनी जल से भर गयी

समस्या से उबारती है? सुभद्रा ने सुजाता के अभिशाप को आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया।

दिन का अन्तिम प्रहर चल रहा था। अभी भी स्त्रियों का कुएँ की ओर आने का क्रम जारी था। राजरानियाँ भी आयी और शील पर प्रश्नचिह्न अंकित करके लौट गयी। सेठानियों से भी काम नहीं हुआ। चारों ओर निराशा का घोर कुहाँसा छाया हुआ था ।

इतने में कुएँ की ओर बढ़ती सुभद्रा पर नजरें जाकर रूक गयी ।

एक पणिहारिन धीमे से बोली–वाह रे वाह ! इस दुश्शीला को तो देखो! अपने शील के बल पर नगर की किस्मत को संवारने चली है ।

दूसरी पणिहारिन बोली–चेहरे से तो भोली–भद्रिका–शीलवंती प्रतीत होती है, कहीं इसे व्यर्थ में बदनाम तो नहीं किया गया !

सुभद्रा सब कुछ अनसुना-अनदेखा करती हुई सधी चाल से कुएँ पर पहुँच गयी ! कुएँ की जगती पर खड़ी पणिहारिणें व्यंग्योक्ति कसती हुई बोली- पधारिये....पधारिये ! तीन दिन पहले ही आपके शील कर गरिमा चंपानगरी में गायी गयी, आज तो त्रिभुवन में महिमा छाने वाली है ।

सुभद्रा पूर्ववत् सहज थी !

उसने छलनी से कच्चे सूत को क्षणार्ध में ही बांध दिया । दूसरे ही पल कुएँ में उतारा । छलनी तीव्र गति से मंजिल की ओर कदम बढ़ाने लगी । लोगों के कान कुएँ की ओर लगे हुए थे कि छलनी छपाक...की आवाज के साथ अब गिरी....अब गिरी पर आशा अगले ही पल निराशा में बदल गयी ।

सुभद्रा की आँखों में आत्म विश्वास और आस्था का प्रकाश झिलमिला रहा था । अब छलनी पानी के बीच पहुँचकर, जलापूर्ण होकर अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर इस तरह बढ़ रही थी जैसे वह किसी मोटी रस्सी से बंधी हुई हो।

सुभद्रा के मन में कहीं कोई आशंका नहीं थी । वह भावी से सर्वथा परिचित थी क्योंकि देव प्रदत्त वचन निष्फल नहीं जाता। शील की उजली किरण आशंकाओं के कुहाँसे को चीरती हुई पानी से छलाछल भरी हुई छलनी बाहर निकल आयी।

पल भर में वातावरण बदल गया। शील की सुगंध के प्रसारित होते ही अशील के कलंक की दुर्गंध छूमंतर हो गयी। दुर्भावना अभिनंदना में बदल गयी।

आशंकाओं के बादल छँट गये और शील-दिवाकर जन-जन में प्रतिष्ठित हो गया। महासती सुभद्रा की जय से अम्बर गूंज उठा। घटना ज्योंहि महिपाल के कानों में पड़ी, उसकी आश्चर्यमिश्रित भावुकता का कोई पार न रहा।

वह दूसरे ही पल सुभद्रा के सम्मुख था।

बेटी! तूं चंपा की गौरव है। आज हमारी नगरी तेरे कारण गौरवान्वित हो गयी है। हमारे सर तेरे शील के सम्मान में

लुलि लुलि विनत हो रहे हैं।

हजारों की जनमेदिनी के साथ सुभद्रा पूर्ववर्ती द्वार पर पहुँची। छलनी में से अंजलिभर पानी भरा और महाद्वार पर छिड़क दिया।

चमत्कार! खड़खड़ाहट की आवाज के साथ द्वार इस प्रकार खुला जैसे दैवीय-प्रकोप हुआ ही न हो। इसी प्रकार अन्य दो द्वारों का उद्घाटन करके सुभद्रा चौथे नगर द्वार पर पहुँची पर उसे खोलने से इन्कार करती हुई बोली-जब कभी भविष्य में किसी शीलवती स्त्री के निर्मल शील को शंका की निगाहों से देखा जायेगा, तब इस द्वार पर जल छिड़काव करके वह अपने शील-धन की सुरक्षा कर सकेगी। सुभद्रा के वक्तव्य से सभी सहमत थे क्योंकि उसमें दीर्घदृष्टि की सुवास थी।

सुभद्रा के शील की प्रतिष्ठा का संवाद उड़ता हुआ ज्योंहि सुजाता के कानों से टकराया, उसे अपने पाँव तले जमीन खिसकती हुई प्रतीत हुई।

अरे! मैंने तो सोचा ही नहीं था कि वह इस प्रकार चंपा में छा जायेगी।

मैंने उस पर लांछन लगाया! अब मैं लोगों को अब अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी? फिर उसने मुझे क्षमा नहीं किया तो? शील-अशील का फैसला ही चुका है तब वह मुझे न्याय की कचहरी में घसीटकर ले जायेगी तो मेरा क्या होगा? सुजाता यह सब सोच ही रही थी कि कदमों की आहट सुनायी दी! दृष्टि गृहद्वार पर खड़ी सुभद्रा पर पड़ी तो आँखें अनायास ही झुक गयी।

सुभद्रा सासु माँ के चरणों का स्पर्श करती हुई बोली-माँजी! आपके आशीर्वाद से ही....

बेटी! तूंने गृहलक्ष्मी बनकर घर को संवारा पर मैं ही अनमोल हीरे का मोल नहीं कर पायी। मुझमें वह योग्यता कहाँ कि तुझे आशीर्वाद दे पाऊँ। मुझे माँ बनकर दुलार देना था, वह सब देना तो दूर, तुझ पर अभिशाप लगाकर जन्म-जन्म के पापों का संचय किया। मैं क्षमा मांगने के योग्य भी नहीं....कहती हुई सुजाता की आँखों में अश्रु छलक

उठे।

सुभद्रा बोली–माँजी! ऐसा मत कहिये। आपका इसमें भला क्या कुसूर है। यह सब तो मेरे पूर्वकृत पापों का उदयकाल था। आप तो निमित्त मात्र थे। आपके प्रति मेरे मन में कोई वैर–विरोध नहीं है। इतने में धर्मदास कहने लगा–बेटी! मेरा अपराध भी कोई छोटा नहीं है। सुजाता और बुद्धदास की गलतियों को मैं मौन समर्थन देता रहा। अब किस मुँह से क्षमा मांगू...!

इतने में बुद्धदास मुखर हुआ–देवी! मैं ही तुम्हारा सबसे बड़ा गुनाहगार हूँ! पहले तो जीवन साथी के साथ विश्वासघात किया, बाद में दु:ख देने में भी कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी। तुमने धर्मपत्नी होने का हर फर्ज निभाया पर मैं अपने अहं और आग्रह पर अकड़ता रहा। क्या तुम अपने इस अपराधी.... इतने में सुभद्रा ने बुद्धदास के होठों पर हाथ रख दिया–ऐसा न कहिये स्वामिन्! मैं तो आपकी आभारी हूँ, जो मुझे कष्टों की आग में तपकर कुंदन बनने का स्वर्णिम अवसर दिया।

चंपा के द्वारों का उद्घाटन सुभद्रा द्वारा

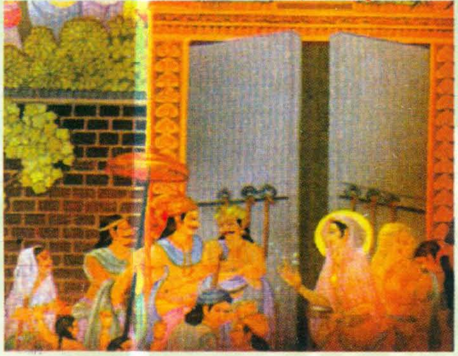

देवी! ये तो तुम्हारी महानता है, जो हमारी गलती और कमजोरी को भी अनदेखा कर रही हो।

बीच में ही सुभद्रा बोली–पिताश्री! गलतियों का होना कमी नहीं पर गलती की स्वीकृति अपने आपमें बहुत बड़ी खूबी है। निश्चित ही मुनिश्री के निर्दोष चरित्र पर जो आक्षेप लगा, वह हमें चैन से न जीने देगा, न मरने देगा। उनसे क्षमा मांगना हमारा परम कर्त्तव्य है।

भयभीत होती हुई सुजाता बोली–नहीं...नहीं! मैं तो यहीं से मनोमन क्षमायाचना कर लूंगी।

क्यों माँजी! आप वहाँ नहीं चलेंगे! सविस्मय सुभद्रा ने पूछा।

बेटी! वे तप सम्पन्न मुनि हैं! कहीं क्रोधाविष्ट होकर शाप दे दिया तो!

तनिक मुस्कुराती हुई सुभद्रा बोली-माँजी! यह आपका भ्रम है कि वे शाप दे देंगे, भस्म कर देंगे या रूष्ट हो जायेंगे। हाँ! वे शक्ति सम्पन्न हैं तो क्षमा सम्पन्न भी हैं। तप सम्पन्न हैं तो शान्ति सम्पन्न भी हैं! हमें चलकर अवश्य ही अपने अपराधों की क्षमा मांगनी चाहिये।

मुनिवर करुणा के अवतार थे, शान्ति के सागर और गुणों के रत्नाकर थे। रूष्ट-तुष्ट, राग-द्वेष के संस्कारों को उनके आभावलय में कहीं स्थान नहीं था।

मुनीन्द्र की क्षमाशीलता के सागर में कदाग्रह का सारा कीचड़ धुल गया। आत्म-तत्त्व की नौका में बैठकर सभी सम्यक्त्व के तट पर उपस्थित हो गये।

सभी की आँखें कृतज्ञता मिश्रित समर्पण के अश्रुओं भीग गयी।

सुभद्रा के फिर नये संसार का श्रीगणेश हुआ। वह कर्त्तव्यों को निभाती हुई सदैव आत्म तत्त्व की एषणा-गवैषणा करती रही।

सुभद्रा संसार से विरक्त हो वैराग्य की ओर चल पड़ी। धर्म-वृक्ष का मधुर फल और सुहानी छाँव पाकर वह उस दशा को प्राप्त हो गयी, जहाँ आत्मा कृतकृत्य हो जाती है।

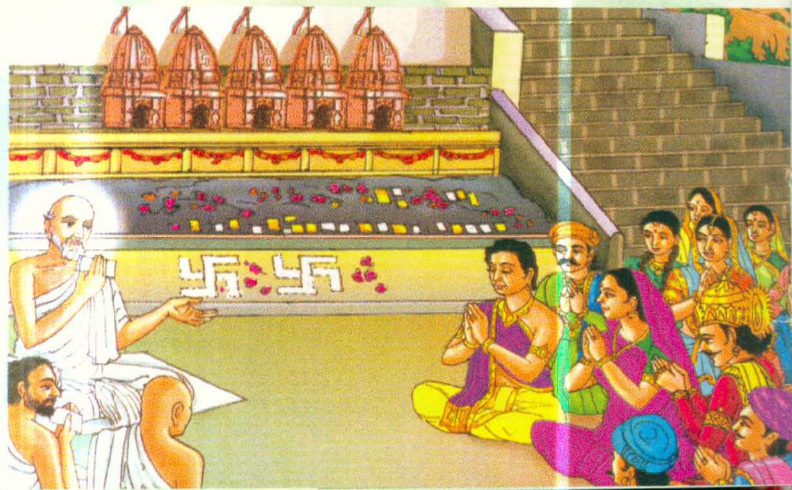

## पू. मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म.सा. की लेखन यात्रा

- जैन जीवन शैली (रंगीन 1-2 खण्ड)
- जैन जीवन शैली
- प्यासा कंठ मीठा पानी (प्रश्नोत्तर ग्रन्थ)
- समस्या-समाधान और सन्तुष्टि (प्रश्नोत्तर ग्रन्थ)
- जीव विचार प्रकरण सार्थ
- जीव विचार प्रश्नोत्तरी
- दण्डक प्रकरण विवेचन-प्रश्नोत्तरी
- प्रत्याख्यान भाष्य विवेचन-प्रश्नोत्तरी
- प्रथम कर्मग्रन्थ विवेचन
- प्रथम कर्मग्रन्थ प्रश्नोत्तरी

### सोलह सती के तीन ग्रन्थ

- सत्य का अमिट सौन्दर्य (रंगीन)
- शील के अमिट शिलालेख (रंगीन)
- सत्य के अमिट हस्ताक्षर (रंगीन)
- खुश्बू कहानियों की
- प्रिय कहानियाँ
- मधुर कहानियाँ
- प्रवाह (1-2 खण्ड)
- खरतरगच्छ गौरव गाथा
- दस महाश्रावक
- लाईफ मेनेजमेन्ट ( रंगीन)
- श्रावकाचार (बारह व्रत)
- क्षमापना
- मिच्छामि दुक्कडम्
- मित्ती मे सव्वभुएसू
- खामेमि सव्व जीवे
- खमिअव्वं खमाविअव्वं
- खमतखामणा
- मिथ्यादुष्कृतम्
- खमाऊँ सा
- क्षमायाचना
- भव-आलोचना
- श्रमण आलोचना
- जैन धर्म में जल का विज्ञान
- वैराग्य शतक भावार्थ
- सुवास वाटिका
- रत्न वाटिका
- माइण्ड मेनेजमेंट
- रिलीजन मेनेजमेंट
- बिहेवियर मेनेजमेंट
- श्रमण चिन्तन
- सौ पहेलियाँ
- तर्क संग्रह (न्याय बोधिनी-पदकृत्य टीका सहित)
- दो प्रतिक्रमण सूत्र (इंग्लिश)

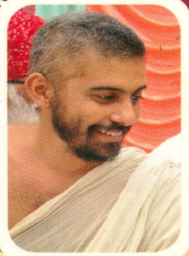

शील से बड़ा कोई शब्द नहीं ।
शील से बड़ी कोई शक्ति नहीं ।
शील ही कुल है, शील ही बल है ।
शील के महाशैल से टकराकर इन्द्र की शक्तियाँ भी नेस्तनाबूद हो जाती हैं ।
शील वह मंत्र है, जो देव को ही नहीं, देवाधिदेव को भी आकर्षित करता है ।
शील वह गहना है, जिसके शृंगार के बिना कोई नारी तो क्या, देवी भी सुन्दर नहीं लग सकती ।
शील के अमिट शिलालेख का अर्थ ही है - शील का सौन्दर्य...
शील का ऐश्वर्य और शील का माधुर्य ।
सावधान! शील के साथ छल करने की भूल मत करना
अन्यथा शील के अमृत जल को नरक के अनल और गरल में बदलते देर नहीं लगेगी ।

मुनि मनितप्रभसागर

COPL/2441